मैसर्स प्राग आइस एण्ड आयल मिल्स और एक अन्य

बनाम

भारत संघ

(M/s. Prag Ice and Oil Mills and another

Vs.

The Union of India)

(21 फरवरी, 1978 और 5 मई, 1978)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़, पी० एन० भगवती, एस० मुर्तजा फज़ल अली, पी० एन० सिंघल, जसवन्त सिंह और डी० ए० देसाई)

संविधान—अनुच्छेद 31-ख, 14,19 (1) (च) और 19(1) (छ)—[सपठित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 और सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1977]—आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन सरसों का तेल (कीमत नियन्त्रण) आदेश, 1977 का जारी किया जाना उक्त अधिनियम का संविधान की नवम् अनुसूची में सम्मिलित किया जाना—यद्यपि नवम् अनुसूची में सम्मिलित किए गए अधिनियम को नवम् अनुसूची का संरक्षण प्राप्त हो जाता है और उस अधिनियम को इस आधार पर अभिखण्डित नहीं किया जा सकता है कि वह भाग-3 के अनुच्छेदों का अतिक्रमण करता है, तथापि उक्त अधिनियम की धारा 3 के अधीन जारी किए गए सरसों का तेल (कीमत नियन्त्रण) आदेश, 1977 को नवम् अनुसूची की संरक्षा प्राप्त नहीं है ऐसे आदेश को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वह संविधान के अनुच्छेद 14,19 (1) (च) और 19(1)(छ) के उपबन्धों का अतिक्रमण करता है जहां तक इस आदेश का संबंध है, वह अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) का अतिक्रमण नहीं करता है।

संविधान—अनुच्छेद 302—"ऐसे निर्बन्धन आरोपित कर सकेगी" अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन—यद्यपि अनुच्छेद 302 में युक्तियुक्त

निर्बन्धन की बाबत कोई भी उपबन्ध मौजूद नहीं है, तथापि उससे यह बात स्पष्ट है कि उसके द्वारा अनुध्यात 'लोक हित' सिद्ध करने की आवश्यकता से "निर्बन्धन" का युक्तियुक्त सम्बन्ध होना चाहिए।

भारत सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश 1977 पारित किया था जिसके अधीन सरसों के तेल को अधिकतम खुदरा विक्रय कीमत 10 रुपये प्रति किलोग्राम नियत की गई थी। पिटीशनरों ने नियंत्रण आदेश पर चार आधारों पर आक्षेप किया। प्रथम यह है कि वह पिटीशनरों के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) के अधीन सम्पत्ति के तथा अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारण्टीकृत अपना व्यापार या कारबार चलाने के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है; दूसरे पिटीशनरों को संविधान के अनुच्छेद 14 के फायदों से वंचित रखा गया है; तीसरे इस आदेश से संविधान के अनुच्छेद 301 का अतिलंघन होता है; और चौथे केन्द्रीय आदेश अधिनियम की धारा 3 के क्षेत्र के बाहर है। पिटीशनों को खारिज करते हुए--

बहुमत-निर्णय

(न्या० चन्द्रचूड़)

अभिनिर्धारित—संविधान का अनुच्छेद 31-क, संविधान के अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी विधियों को जिनमें उसके खण्ड (क) से लेकर खण्ड (ङ) में उल्लिखित विषयों के लिए उपबन्ध किया गया है, अनुच्छेद 14, 19 या 31 के अधीन चुनौती दिए जाने से संरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 31-ख जो कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा पुरःस्थापित किया गया था, यह उपबन्ध करके कतिपय अधिनियम और विनियमों को विधिमान्य ठहराता है कि अनुच्छेद 31क में अन्तर्विष्ट उपबन्धों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न तो नवम् अनुसूची में उल्लिखित अधिनियमों और विनियमों में से किसी को और न उनके उपबन्धों में से किसी की बाबत, इस कारण कि ऐसा अधिनियम विनियम या उपबन्ध भाग 3 के किन्हीं उपबन्धों द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसको छीनता है, या न्यून करता है, यह नहीं समझा जाएगा कि वह शून्य है या कभी शून्य था। इस अनुच्छेद का स्पष्ट रूप से अर्थान्वयन करने पर यह स्वीकार करना

असम्भव प्रतीत होता है कि नवम् अनुसूची की संरक्षात्मक अतिव्यापक परिधि के भीतर न केवल उसमें विनिर्दिष्ट अधिनियम और विनियम आते हैं, बल्कि उन अधिनियमों और विनियमों के अधीन निकाले गए आदेश और अधिसूचनाएं भी आती हैं। अनुच्छेद 31-ख मूल अधिकारों में अनधिकृत रूप से हस्तक्षेप करता है और चूंकि निस्संदिग्ध रूप से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वह दीप्तिमान सामाजिक दर्शन द्वारा प्रेरित है, अतः उसका अर्थान्वयन मात्र इन कारणों से कि मूल अधिकारों की गारण्टी के महत्व को विवक्षाओं और अनुमानों द्वारा कम किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है, इतनी कड़ाई के साथ किया जाना चाहिए, जितनी कि कोई कर सकता है। संविधान के इस अभिव्यक्त उपबन्ध का जो कि उस सीमा को विहित करता है जिस तक किसी विधि को सांविधानिकता की चुनौती अपवर्जित होती है, अर्थान्वयन इस रूप में किया जाना चाहिए कि वह अपवर्जन की सर्वाधिक सीमा तक रेखांकन करता है। उस विषय-वस्तु की प्रकृति पर विचार करते हुए, जिसके सम्बन्ध में अनुच्छेद 31-ख में उपबन्ध किया गया है, हमारी राय में, उस क्षेत्र की जिसकी बाबत उस अनुच्छेद द्वारा यह घोषित किया गया है कि वह मूल अधिकारों के अतिक्रमण या न्यूनन के आधार पर चुनौती दिए जाने से उन्मुक्त है, सीमाओं का न्यायिक निर्वचन द्वारा, विस्तार करने के लिए कोई भी औचित्य नहीं है। यह अनुच्छेद नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमों और विनियमों को संरक्षण प्रदान करता है। अतः जब कभी भी किसी विधि के उपबन्ध की सांविधानिकता की चुनौती को इस आधार पर कि वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों में से किसी का अतिक्रमण करती है, इस अभिवाक् के आधार पर राज्य द्वारा अस्वीकृत कराए जाने की कोशिश की जाती है कि वह विधि नवम् अनुसूची में रखी गई है, तब संकुचित प्रश्न जो कि कोई स्वयं ही उठा सकता है, यह है कि क्या आक्षेपित विधि उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट है। यदि ऐसा है, तो अनुच्छेद 31-ख के उपबन्ध लागू होंगे और आगे किसी भी जांच के बिना, वह चुनौती असफल हो जाएगी। दूसरी ओर, यदि वह विधि नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट नहीं है, तो चुनौती की विधिमान्यता की परीक्षा यह अवधारित करने की दृष्टि से की जानी चाहिए कि क्या उसके उपबन्ध भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों में से किसी के, किसी भी रीति से, विरुद्ध हैं। यह कहना उसका कोई भी उत्तर नहीं है कि यद्यपि विशिष्ट विधि,

1978(2) eILR(PAT) SC 1

उदाहरणार्थ, नियंत्रण आदेश, नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट नहीं है, तथापि मूल अधिनियम जिसके अधीन आदेश जारी किया गया है, उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट है। सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1977 आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन पारित किया गया था चूंकि 1955 का अधिनियम नवम् अनुसूची में रखा गया है, इसलिए धारा 3(1) को सम्मिलित करते हुए, उसके उपबन्धों में से किसी पर भी इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि वह संविधान के भाग 3 के उपबन्धों में से किसी द्वारा प्रदत्त अधिकारों से कभी असंगत है या उसे छीनता है या न्यून करता है। किन्तु अनुच्छेद 31-ख अधिक से अधिक जो उन्मुक्ति प्रदान कर सकता है, वह यही है। अन्य शब्दों में, प्रत्यक्षतः इसी मुद्दे से संबंधित उपबन्ध की बाबत मत व्यक्त करते हुए और सुसंगत उदाहरण देते हुए, 1955 के अधिनियम की धारा 3(1) को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) या 19(1)(छ) में अन्तर्विष्ट गारण्टी का अतिक्रमण करती है। किन्तु, जैसा कि सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश है, अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित किसी आदेश को उस उन्मुक्ति की संरक्षा का विस्तार करने के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं है। किसी ऐसे अधिनियम या विनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट है, की गई किसी कार्यवाही को अनुच्छेद 31-ख द्वारा दी गई संरक्षा के फायदे का विस्तार करने की बात उन उपबन्धों का जो कि अनुच्छेद 31-ख में अन्तर्विष्ट है, और जो न तो उसकी भाषा द्वारा और न ही उसमें अन्तर्निहित नीति या सिद्धान्त द्वारा न्यायोचित है। ऐसा अनौचित्यपूर्ण विस्तार है। जब कोई विशिष्ट अधिनियम या विनियम नवम् अनुसूची में रखा जाता है, तो संसद् की बाबत यह माना जा सकता है कि उसने किसी विशिष्ट अधिनियम या विनियम के उपबन्धों के सम्बन्ध में और उसकी वांछनीयता, औचित्य या इस आवश्यकता की बाबत अपनी बुद्धि का प्रयोग किया है कि उसे इस दृष्टि से नवम् अनुसूची में रखा जाना चाहिए जिससे कि इस आधार पर उसके उपबन्धों को इस सम्भावित चुनौती से बचाया जा सके कि वे भाग 3 के उपबन्धों का उल्लंघन करते हैं। जैसी कि स्थिति है, किसी ऐसे अधिनियम या विनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में रखा गया है, सरकार द्वारा जारी किए गए आदेश की दशा में ऐसी उपधारणा नहीं की जा सकती है। यदि

न्यायिक निर्वचनों द्वारा सांविधानिक उन्मुक्तता का विस्तार ऐसे आदेशों पर किया जाता है जिसकी विधिमान्यता के सम्बन्ध में संसद् को कम से कम सैद्धान्तिक रूप से ही, अपनी बुद्धि का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं था, तो मूल अधिकारों का महत्व पर्याप्त सीमा तक कम हो जाएगा। ऐसा विस्तार इस उपधारणा के आधार पर किया जाता है कि ऐसे प्राधिकारी जिनको किसी कानून के अधीन समुचित कार्यवाही करने के लिए शक्ति प्रदत्त की गई है, कानून के ढांचे के और अनुज्ञेय सांविधानिक सीमाओं के भीतर रहते हुए इस उपधारणा को स्वीकार करते हैं जिससे विगत अनुभव न्यायोचित नहीं ठहराता और जो किसी सीमा तक मिथ्या साबित होती है। वास्तव में, व्युत्पन्न उन्मुक्ति के सिद्धान्त को लागू करके विधियों को कायम रखने की बाबत संविधान की युक्ति के विरुद्ध है और तदनुसार ऐसे अधिनियम और विनियमों के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गए हैं, जारी किए गए आदेश और अधिसूचनाओं को इस चुनौती का सामना करना चाहिए कि वे संविधान के भाग 3 के उपबन्धों का उल्लंघन करते हैं। नवम् अनुसूची में रखे जाने के कारण मूल अधिनियम को जो उन्मुक्ति प्राप्त है। उसका विस्तार अपने ही बल पर अधिनियम के अधीन बनाए गए कानून पर जैसा कि अधिनियम के प्राधिकार के अधीन निकाला गया कीमत नियंत्रण आदेश है, नहीं किया जा सकता है। अतः पिटीशनरों को यह अधिकार है कि वे इस प्रश्न के अवधारण के लिए इस न्यायालय की रिट अधिकारिता का प्रयोग करें कि क्या कीमत नियंत्रण आदेश के उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(च), और 19(1)(छ) का अतिक्रमण करते हैं। (पैरा, 44 45)

कीमत नियंत्रण आदेश को इस आधार पर दी गई चुनौती को कि वह अनुच्छेद 14, 19(1)(च) और 19(1)(छ) का उल्लंघन करता है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। सबसे पहले अनुच्छेद 14 के अधीन दी गई चुनौती पर विचार करते हुए यह दलील पेश की गई है कि आक्षेपित आदेश, कच्चे माल के उपापन की लागत और भाड़े जैसी बातों से सम्बन्धित क्षेत्रीय भिन्नताओं की उपेक्षा करते हुए, सम्पूर्ण देश को एक एकक के रूप में मानता है। अन्य शब्दों में, दलील यह है कि यह आदेश अति-समावेशी है, क्योंकि वह उन व्यक्तियों की अपेक्षा जिनकी बाबत वैध रूप से यह माना जा सकता है कि वे रिष्टि का उपचार करने

के प्रयोजनार्थ जो कि विधि का लक्ष्य है, एक एकल वर्ग गठित करते हैं उन व्यक्तियों के विस्तृत क्षेत्र पर समान भार अधिरोपित करके असमान के रूप में मानता है। प्रथमतः, विभिन्न रिट पिटीशनों में किए गए प्रकथन अनुच्छेद 14 की प्रयोज्यता को न्यायोचित ठहराने के लिए कहीं अधिक अस्पष्ट और व्यापक हैं। पिटीशनर इस स्वीकार्य आधार-सामग्री द्वारा यह दर्शित करने में असफल रहा है कि वह पूर्णतः पृथक वर्ग में आती है और इसी कारण से उसे कीमत नियतन के एकल आदेश के अवरोध के अध्यधीन नहीं किया जा सकता। किन्तु वह बात स्वयं इस दलील को न्यायोचित नहीं ठहरा सकती कि भिन्न-भिन्न कीमतें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए नियत की जानी चाहिए और यह कि ऐसा करने में हुई असफलता के परिणामस्वरूप विभेद होगा। जहां कहीं भी सरसों के तेल के व्यापारी कार्य करते हैं, वे कीमत नियतन के प्रयोजन के लिए, विशेषकर एक एकल वर्ग को, उचित रूप से गठित करते हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि व्यापार के दो आधारभूत सिद्धान्त ये हैं कि सरसों के ऐसे दानों की लागत, जो कि सरसों के तेल की लागत का 94 प्रतिशत होता है और यह कि 3.12 किलोग्राम दाना निस्सृत होने के बाद 1 किलोग्राम तेल निकलता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न कीमतों के नियतन से, इस पृष्ठभूमि में, इस बात का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा कि उपभोक्ता को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तु उपलब्ध की जानी चाहिए। वास्तव में जो प्रश्न है, वह यह है कि क्या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के व्यवहारियों की बाबत यह कहा जा सकता है कि उस प्रयोजन के सन्दर्भ में और सम्बन्ध में, जिसके लिए कीमत नियंत्रण आदेश निकाला गया है, उनकी स्थिति इतनी भिन्न है कि देश भर में व्यवहारी के लिए एक सामान्य कीमत की बाबत युक्तियुक्त रूप से यह कहा जा सकता है कि वह उनमें से कुछ के विरुद्ध विभेदकारी है। इस दलील का समर्थन करने के लिए कोई भी विश्वसनीय आधार मौजूद नहीं है और मात्र इस कारण से कि किन्हीं क्षेत्रों के व्यवहारियों को अन्य क्षेत्र से अपने कच्चे माल का आयात करना पड़ता है, अतिसमावेशन के आरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता। पश्चिमी बंगाल जैसे क्षेत्र में व्यापारावर्त और उपभोग की ऊंची दर, कदाचित, भाड़े की अतिरिक्त लागत को सरलता के साथ संविलीन कर सकती है। भारत सरकार ने, सम्पूर्ण देश के लिए सरसों के तेल की एक सामान्य कीमत नियत करके, हिरोड की भांति कार्य किया

1978(2) eILR(PAT) SC 1

है जिसने उन सभी पुरुष-बच्चों को मृत्यु के घाट उतार देने का आदेश दिया था, जिनका जन्म किसी विशिष्ट दिन हुआ था, क्योंकि उनमें से एक उसी दिन उसकी अवनति का कारण बनेगा। यह दिलचस्प है कि कीमत नियतन के मामले में प्राधिकारी जो भी ढंग अपनाते हैं, वह प्राय: विरोधी तथा परस्पर विरोधी, इस या उस कारण से चुनौती की विषय-वस्तु बनाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि यदि इस आधार पर कि वहां पर व्यापारियों को बाहर से कच्चे माल का आयात करने की आवश्यकता नहीं होती है, उत्तर प्रदेश के लिए निचली कीमतें नियत की जाती, तो यह शोर-गुल मचाया गया होता कि भारत सरकार इस असंगत कारण से किसी विशिष्ट क्षेत्र के व्यवहारियों को इसलिए सता रही है कि उस क्षेत्र में कच्चा माल बहुतायत में पैदा होता है। अन्तिम रूप से विश्लेषण करने पर, कीमत नियतन की प्रक्रिया को निश्चित रूप से कार्यपालिका के निर्णय पर छोड़ना पड़ेगा और जब तक कि यह बात स्पष्ट न हो कि व्यवहारियों के किसी वर्ग के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण विभेद किया गया है, कीमत नियतन के प्रक्रियात्मक आधार को, साधारण मामले में, विधिमान्य स्वीकार करना होगा। (पैरा 50, 51)

वस्तुत: कीमत नियंत्रण आदेश से संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) और 19(1)(छ) के अधीन प्रदत्त उनके अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होता है। पहली बात यह है कि इन रिट पिटीशनों के इस पक्षकथन की परिशुद्धता को अवधारित करना संभव है कि जैसे-जैसे सरसों की पेराई चलती है, वे मासानुमास और सप्ताहनुसप्ताह सरसों के दाने खरीदते चलते हैं। भारत सरकार की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र में अन्तर्विष्ट इस कथन पर सन्देह करने के लिए कोई भी कारण दिखाई नहीं देता कि सरसों दाने उगाने वाले अधिकांश ऐसे छोटे कृषक होते हैं जिनके पास प्रतीक्षा करने की कोई क्षमता नहीं होती है और इसी कारण से वे अपना उत्पाद फसल काटने के तुरन्त बाद मार्च और जून के बीच बेचने के लिए विवश होते हैं। यदि उस कालावधि के दौरान अभिभावी सरसों के दानों की कीमतें विचार में ली जाती हैं, तो यह स्वीकार करना कठिन है कि 10 रुपये प्रति किलोग्राम की कीमत उतने स्पष्ट रूप से युक्तियुक्त है कि वह उससे सम्पत्ति धारण करने या व्यापार करने या व्यवसाय करने के पिटीशनर के अधिकार का अतिक्रमण होता है। आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3(1) केन्द्रीय सरकार को

आवश्यक वस्तुओं की कीमतें नियत करने के लिए उस दशा में सशक्त करती है यदि उसकी यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उचित कीमत पर उनके साम्यापूर्ण वितरण और उपलभ्यता को सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है। धारा 3 की उपधारा (2)(ग) में यह उपबन्ध किया गया है कि उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उस उपधारा के अधीन किए गए किसी आदेश में उस कीमत को नियंत्रित करने के लिए उपबंध किया जा सकता है जिस पर कोई आवश्यक वस्तु खरीदी या बेची जा सकती है, इन उपबन्धों का मुख्य प्रयोजन उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तुओं की उपलभ्यता को सुनिश्चित करना है। और यद्यपि उत्पादक के साथ स्पष्ट रूप से किए जाने वाले अन्याय को प्रोत्साहित नहीं किया जाना है, तथापि विनियोजन पर युक्तियुक्त प्रत्यागम का होना या युक्तियुक्त दर से लाभ का होना आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) और 3(2)(ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को अग्रसित करने की दृष्टि से की गई कार्यवाही की विधिमान्यता के लिए अनिवार्य नहीं है। उपभोक्ता के हित को सामने रखना होता है और इस मुख्य विचार से कि सामान्य व्यक्ति को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तु उपलभ्य की जानी चाहिए, प्रत्येक अन्य विचार के ऊपर अधिमानता प्राप्त होनी चाहिए। (पैरा 55, 58)

विगत वर्षों में पिटीशनरों द्वारा कमाए गए लाभों की सीमा विषयक समाधानकारी सबूत के अभाव में भी इन परिस्थितियों से कि पिटीशनरों को कीमत नियंत्रण आदेश के प्रख्यापित होने के तुरन्त बाद संक्षिप्त कालावधि के लिए हानि उठानी पड़ सकती है, वह आदेश सांबिधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं हो जाएगा। बाजार में अभिभावी कीमतों के ढांचे पर आर्थिक बातों की परस्पर क्रिया का और मांग तथा प्रदाय की विधियों का अन्तिम रूप से प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। यदि व्यवहारी 10 रुपये प्रति किलोग्राम से अधिक की दर से परिसाधित उत्पाद का विक्रय विधिपूर्ण रूप से नहीं कर सकता है, तो उत्पाद की कीमत के अनुसार कच्चे माल की कीमत अपने आप ही समायोजित होना आवश्यम्भावी है। बाद वाली घटनाओं से निसंदिग्ध रूप से ऐसी परस्पर क्रिया और ऐसी अनुकूल प्रतिक्रिया का प्रभाव दर्शित होता है कि जो कि कीमत नियंत्रण आदेश के परिणामस्वरूप सरसों के दाने की कीमत पर पड़ता है।

किन्तु, इन सब बातों के अलावा, इस प्रकार के मामलों में यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि ऐसे उपबन्धों पर सामाजिक रूप से रचनात्मक दृष्टि से, न कि वैध रूप से, संकुचित ढंग से किसी स्पष्ट असांविधानिक कमजोरी का पता लगाने की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए; यह कि जब समुदाय के बड़े भाग को प्रभावित करने वाली विधियां अधिनियमित की जाती हैं, तो अप्रत्याशित और दुर्भाग्यपूर्ण बातें होनी आवश्यक हैं और यह कि परेशानी के बिना, ऐसा सामाजिक विधान, जिसका प्रभाव स्थिर अधिकारों पर पड़ता हो, वास्तव में असम्भव है। आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्ति, निस्संदेह प्रयोजन-सूचक है, किन्तु यह बात अकाट्य मालूम होती है कि सरकार ने कीमत नियंत्रण आदेश इस दृष्टि से प्रख्यापित किया था जिससे कि अधिनियम की धारा 3(1) में उप-वर्णित प्रयोजन सिद्ध हो सके। इस तथ्य से कि कोई विधायी अधिकार या कानूनी शक्ति के प्रयोग में पारित कोई प्रशासनिक आदेश किसी दोष को कम करने में अप्रभावी हैं, यह दर्शित हो सकता हैं कि वह अपना प्रयोजन सिद्ध करने में असफल रहा है जिससे कि सुधार के विरोधाभास का पता चलता है, किन्तु दुस्साध्य सामाजिक विवाद्यकों के सम्बन्ध में कार्रवाई करने की दृष्टि से विधायी कोशिशों में अन्तर्निहित यत्न और भूल सुधार के लिए वही कीमत चुकानी पड़ती है। अतः, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि सरसों के तेल के लिए उचित कीमत नियत करके, सरकार ने प्राइवेट अधिकारों का या ऐसे विधायी क्षेत्र का जिस पर कब्जा करने का उसे अधिकार नहीं है, प्रच्छन्न और सूक्ष्म रूप से अतिचार किया है। संक्षेप में, यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती कि आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश उनके विरुद्ध शत्रुतापूर्ण विभेद का कार्य है या यह कि वह सम्पत्ति के अधिकार या व्यापार या कारबार करने के अधिकार का अतिक्रमण करता है। पिटीशनरों ने अपने व्यापार सम्बन्धी संक्रियाओं के तंत्र के बहुत ही विस्तृत ब्यौरे बताए हैं और उन्होंने उसके सम्बन्ध में यह दर्शित करने की कोशिश की है कि यहां और वहां की जिस किसी बात को उस समय जब कि सरसों के तेल की कीमत नियत की जा रही थी, विचार में लिया जाना था, उसकी उपेक्षा कर दी गई है। उसी प्रकार की दलील के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था कि किसी विधि में गलती निकालने में समर्थ होना उसकी अविधिमान्यता को दर्शित करना

नहीं है। वह अन्यायोचित और क्रूर दिखाई पड़ सकती है, किन्तु फिर भी वह न्यायिक हस्तक्षेप से मुक्त हो सकती है। सरकार की समस्याएं व्यवहारिक होती हैं और भले ही उन्हें इसकी आवश्यकता न हो, उनका अनुचित समायोजन करना न्यायोचित होगा, चाहे वह असंगत या अवैज्ञानिक ही क्यों न हों। किन्तु ऐसी आलोचना की अभिव्यक्ति जल्दबाजी में नहीं की जानी चाहिए। जो बात सर्वाधिक अच्छी होती है, वह सदैव दृष्टिगोचर नहीं होती है; किसी बात के चुनाव के सम्बन्ध में जो बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की जाती है, उसकी बाबत विवाद हो सकता है या उसकी निन्दा की जा सकती है। सरकार की गलतियां मात्र न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन नहीं रहती है। केवल प्रत्यक्षतः मनमाने प्रयोगों से ही उसे शून्य घोषित किया जा सकता है। चूंकि संसद ने सरकार के विशेषज्ञतापूर्ण निर्णय के लिए कीमतों के नियतन का कार्य सौंप दिया था, इसलिए इस न्यायालय के लिए यह गलत होगा कि सरकार ऐसे व्यावहारिक समायोजन की हकदार है जो कि विशिष्ट परिस्थितियों द्वारा अपेक्षित हों और कीमत नियंत्रण को केवल तभी असांविधानिक घोषित किया जा सकता है, यदि वह स्पष्ट रूप से मनमाना, विभेदकारी या उस नीति से स्पष्ट रूप से असंगत हो जिसे अपनाने के लिए विधानमण्डल स्वतन्त्र है। उत्पादक और विनियोजन दोनों का हित युक्तियुक्तता की सांविधानिक स्थिति में परिवर्तनीय बातों में से मात्र एक है और न्यायालयों को यह नहीं चाहिए कि वे युक्तियुक्तता के भीतर मोटे तौर से उचित कीमत नियत करें। (पैरा 59, 68 और 69)

यद्यपि अनुच्छेद 302 में 'युक्तियुक्त' निर्बन्धनों का कोई उल्लेख नहीं है, तथापि यह स्पष्ट है कि उसके द्वारा अनुध्यात निर्बन्धनों का 'लोक हित' साधन की जरूरत के साथ युक्तियुक्त संबंध अवश्य होना चाहिए। यदि किसी आदेश द्वारा अधिनियम की धारा 3 में अधिकथित कसौटियों को पूरा कर दिया जाता है तो वह लोकहित साधन में विफल नहीं होगा अतः इस दृष्टिकोण से भी केवल इस बात पर विचार करना पर्याप्त होगा कि क्या नियंत्रण आदेश अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत आता है स्पष्ट है कि पिटीशनरों के काउन्सेल ने इसी करण से अनुच्छेद 301 का उल्लेख मात्र करने के सिवाए यह दर्शित करने के लिए अधिक तर्क नहीं दिया था कि इस मामले में धारा 301 किस प्रकार अन्तर्वलित है और ऐसा करना सर्वथा उचित था। (पैरा 8)

1978(2) eILR(PAT) SC 1

विसम्मत निर्णय

(मुख्य न्यायाधिपति बेग और न्यायाधिपति देसाई)

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन पारित नियंत्रण आदेश से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह अनुच्छेद 14 और 19 (1) (च) और (छ) सपठित अनुच्छेद 19(5) और (6) द्वारा अधिरोपित विधिमान्यता की कसौटियों को पूरा करे क्योंकि उसका क्षेत्र उन उपबंधों से अधिक व्यापक नहीं हो सकता जो उसका प्रख्यापित किया जाना प्राधिकृत करते हों। कोई प्रत्यायोजित या व्युत्पन्न शक्ति उस शक्ति के स्रोत से अधिक या बाहर नहीं हो सकती है जिससे वह प्राधिकार और बल प्राप्त करती है। (पैरा 11)

यदि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन पारित आदेशों को भी संरक्षण मिल जाता है तो इसे यदि आदेश अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत आते हैं तो 'व्युत्पन्न' (डेरिवेटि) संरक्षण के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह संरक्षण केवल तभी और इसी कारण से उपलभ्य होता है कि उनके प्राधिकार के स्रोत अधिनियम की धारा 3 का नवम् अनुसूची द्वारा संरक्षण होता रहता है। तथापि अधिनियम की धारा 3 के अधीन अपनाए गए तात्पर्यित आदेशों को प्रत्येक मामले में स्वयं धारा 3 में ही दी गई कसौटियों पर अवश्य खरा उतरना होगा। उनके प्राधिकार के स्रोत, धारा 3 का नवम् अनुसूची द्वारा संरक्षण किया जाए या नहीं, वे आधारभूत कसौटियों से कदापि नहीं बच सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा धारा 3 में समाविष्ट की गई अतिरिक्त कसौटियों को इन आदेशों को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब कि ये अतिरिक्त कसौटियां अधिनियम की धारा 3 से संबंधित कि जा सकें या उनका धारा 3 में अनुमान लगाया जा सके। (पैरा 15)

यदि उस धारा का जिसके अधीन कीमत नियंत्रण आदेश पारित किया गया था, संविधान के भाग 3 के उपबंधों पर आधारित किसी आक्षेप से संरक्षण हो जाता है और नियंत्रण आदेश उन सशक्त करने वाले उपबंधों के अन्तर्गत आ जाता है, जिनका संरक्षण किया गया है, तो वह विधिमान्य होगा। यदि वह सशक्त करने वाले उपबंधों के बाहर है, तो किसी भी दशा में वह अविधिमान्य होगा। यदि वह सशक्त करने वाले उपबंधों के अन्तर्गत आता है, किन्तु उसके बारे में यह निष्कर्ष निकल सकता

है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) के उपबंधों का अतिक्रमण करता है, तो अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) के आधार पर नियंत्रण आदेश के विरुद्ध किया गया आक्षेप वस्तुतः उसे सशक्त करने वाले उपबंधों पर ही आक्षेप होगा जिसका संरक्षण किया जा चुका है। अतः नियंत्रण आदेश को व्युत्पन्न संरक्षण प्राप्त है। केन्द्रीय सरकार को केवल यह दर्शित करना होता है कि वह सशक्त करने वाले उपबंध के अन्तर्गत आता है। ऐसी दशा में संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मूल अधिकारों के आधार पर इसे कोई अन्य कसौटी लागू नहीं की जा सकती है। (पैरा 19)

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 का उद्देश्य साम्यापूर्ण वितरण और उचित कीमतों पर उपलभ्यता को सुनिश्चित करना है जिससे किसी समय विशेष पर कोई वस्तुपरक कसौटियां लागू करते समय उपभोक्ता को, न कि उत्पादक का हित-अवधारक बात होगी। अतः सरसों के तेल की, जिसका उपभोग साधारण तौर पर सीमित साधनों वाले जन-साधारण द्वारा किया जाता है, कीमत नियत करते समय अत्यधिक महत्वपूर्ण वस्तुपरक तथ्य औसत क्रेता या उपभोक्ता की संदाय-क्षमता होता है। भयानक मुद्रा-स्फीति के दौर को समाप्त करने के प्रयास के भाग के रूप में 10 रुपये प्रति किलोग्राम पर नियत की गई कीमत कदापि अनुचित कदम नहीं है। किसी विधायी अध्युपाय का सरोकार किसी व्यष्टिक मामले के तथ्यों से नहीं होता है। उसका आशय एक विशिष्ट प्रकार या वर्ग के सब व्यक्तियों या वस्तुओं या संव्यवहारों के लागू होने वाला सामान्य नियम अधिकथित करना होता है। सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1977 भारत में कहीं पर भी किसी भी व्यवहारी द्वारा सरसों के तेल के विक्रय को लागू होता है। विधिमान्यता को पुरोभाव्य शर्तों के रूप में अनुपालित की जाने वाली किसी विशिष्ट प्रक्रिया के अनुपालन पर या किन्हीं विनिर्दिष्ट मामलों के लिए जाने वाले विशिष्ट प्रकार के साक्ष्यों पर इसकी विधिमान्यता निर्भर नहीं करती है। विधिमान्यता की कसौटी पारित आदेश और उन प्रयोजनों के बीच जिनके लिए वह पारित किया जा सकता है, सम्बन्ध दर्शित करके या, दूसरे शब्दों में, सम्भाव्य या अधिसम्भाव्य परिणामों के आधार पर परखी गई युक्तियुक्तता द्वारा पूरी हो जाती है। आवश्यक वस्तु अधिनियम के संविधान की नवम अनुसूची में सम्मिलित कर लिये जाने के पश्चात् धारा

1978(2) eILR(PAT) SC 1

3 को अनुच्छेद 31-ख के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी। अनिवार्य रूप से परिणाम यह है कि जिस मामले में केन्द्रीय सरकार समीचीनता और आवश्यकता की इस हद तक निर्णायक हो कि ऐसी आवश्यकता या समीचीनता विषयक उसके दृष्टिकोण या उसकी राय के मार्ग में गारण्टीकृत मूल अधिकारों का संरक्षण भी न आता हो, वहां अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधारों पर चुनौती सफल नहीं हो सकती थी। अनुच्छेद 14 और 19 संविधान की नवम् अनुसूची द्वारा अधिनियम की धारा 3 को प्रदत्त संरक्षण के कारण अपवर्जित हो जाते हैं। यदि कीमत नियंत्रण के किसी अध्युपाय पर, जो विधायी स्वरूप का या विशुद्धता प्रशासनिक कार्रवाई के स्वरूप का हो, आक्षेप किया गया हो तो उपभोक्ताओं के हितों के प्रति प्रकट अन्याय और अनुचित क्षति दर्शित की जानी होगी। जब तक कि की जाने वाली कार्रवाही इतने प्रकट रूप से अन्यायपूर्ण या अयुक्तियुक्त नहीं है जिससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता हो कि वह अधिनियम की धारा 3 (1) के अन्तर्गत नहीं आ सकती तब तक उसे अपास्त नहीं किया जा सकता या अविधिमान्य घोषित नहीं किया जा सकता। कसौटी अधिनियम की धारा 3 (1) द्वारा ईप्सित उद्देश्यों पर उस कार्रवाई के परिणाम विषयक ही होगी। यदि इस कसौटी के आधार पर परखा जाए, तो सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1977 अधिनियम की धारा 3 की व्याप्ति के अन्तर्गत आता है और इसने अपने प्रयोजनों को पूरा कर दिया है। (पैरा 20, 25, 36 37 और 39)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1975] (1975) 1 एस० सी० आर० 956=[1975] 1 उम० नि० प० 578:
सरस्वती इण्डस्ट्रियल सिण्डीकेट लिमिटेड बनाम भारत संघ
(Saraswati Industrial Syndicate Ltd. *Vs.* The Union of India); 35, 51, 60, (2

पैरा

[1975] (1975) 3 एस० सी० ग्रार० 885=[1975] 3 उम० नि० प० 478 :
गोदावरी शुगर मिल्स लिमिटेड और अन्य बनाम एस० बी० काम्बला और अन्य
(Godavari Sugar Mills Ltd. and others *Vs.* S. B. Kambla and others); 17, 49

[1975] (1975) 2 एस० सी० ग्रार० 774-782= [1975] 2 उम० नि० प० 257 :
बी० बनर्जी बनाम ग्रनीता पान
(B. Banerjee *Vs.* Anita Pan); 59

[1974] (1974) 2 एस० सी० ग्रार० 398=[1974] 1 उम० नि० प० 651 :
मीनाक्षि मिल्स लि० बनाम भारत संघ
(Meenakshi Mills Ltd. *Vs.* The Union of India); 33, 34, 38, 64

[1973] (1973) 2 एस० सी० ग्रार० 860=[1973] 1 उम० नि० प० नि० सा० 49 :
पानीपत कोग्रापरेटिव शुगर मिल्स बनाम भारत संघ
(Panipat Cooperative Sugar Mills *Vs.* The Union of India); 33, 64

[1973] (1973) 2 एस० सी० ग्रार० 760-782 :
गुजरात राज्य बनाम श्री ग्रम्बिका मिल्स लिमिटेड
(The State of Gujarat *Vs.* Shri Ambica Mills Ltd.); 50

[1973] ए० ग्राई० ग्रार० 1973 एस० सी० 734 :
अंकापल्ले को-ग्रापरेटिव एग्रीकल्चरल एण्ड इंडस्ट्रियल सोसायटी लिमिटेड बनाम भारत संघ
(Anakapalle Co-operative Agricultural and Industrial Society Ltd. *Vs.* Union of India); 64

[1972] (1972) 2 एस० सी० ग्रार० 526= [1972] 1 उम० नि० प० नि० सा० 91 :
प्रीमियर ग्राटोमोबाईल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ
(Premier Automobiles Ltd. *Vs.* The Union of India); 34, 68, 69

पैरा

[1971] (1971) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 719 :
लताफत अली खां और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Latafat Ali Khan and others *Vs.* The State of Uttar Pradesh); 19, 46, 47

[1970] (1970) 1 एस० सी० आर० 400-409 :=
[1970] 2 उम० नि० प० 319 :
ब्रज लाल मणि लाल एण्ड कम्पनी और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य
(Vrajlal Manilal and Co. and others *Vs.* The State of Madhya Pradesh and others); 57

[1968] (1968) 20 लायर्स एडीशन द्वितीय 312 :
परमियन बेसिन एरिया रेट केसेज
(Parmian Basin Area Rate Cases); 69, 39

[1961] (1961) 1 एस० सी० आर० 341 :
बसंत लाल मगनभाई गंजनवाला बनाम मुम्बई राज्य और अन्य
(Vasantlal Maganbhai Ganjanwala *Vs.* The State of Bombay and others); 46

[1960] (1960) 2 एस० सी० आर० 375 :
नरेन्द्र कुमार और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(Narendra Kumar and others *Vs.* The Union of India and others); 67

[1955] (1955) 1 एस० सी० आर० 380 :
श्री हरि कृष्ण बागला बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Shri Hari Kishan Bagla *Vs.* The State of Madhya Pradesh); 11

[1954] (1954) एस० सी० आर० 1 :
के० सी० गजपति नारायण देव और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य
(K. C. Gajpati Narayan Deo and others *Vs.* The State of Orissa); 68

पैरा

[1951] (1951) 96 लॉयर्स एडीशन 919 :
जोसेफ बोबेरेसिस बनाम **पीपुल आफ दि स्टेट आफ इलिनोओस**
(Joseph Boauharnais *Vs.* People of the State of Illinois); 68

[1950] (1950) 94 ला एडीशन 381 :
सेक्रेटरी आफ एग्रीकल्चर बनाम **सैन्ट्रल रोज रिफाइनिंग कम्पनी**
(Secretary of Agriculture *Vs.* Central Reiej Refining Company); 63

[1933] (1933) 291 यू० एस० 78 लायर्स एडीशन 940 :
लियो नेब्बिया बनाम **पीपुल आफ दि स्टेट आफ न्यूयार्क**
(Lew Nebbia *Vs.* The People of the State of New York); 39, 67

[1913] (1913) 57 लायर्स एडीशन 730 :
मैट्रोपोलिस थियेटर कम्पनी बनाम **सिटी ऑफ शिकागो**
(Matropollis Theatre Company *Vs.* City of Chicago). 69

आरम्भिक अधिकारिता : 1977 के रिट पिटीशन संख्या 712, 715-739, 760-764, 765-770, 779-780, 781-784, 838-855, 861-875 और 874-892.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए पिटीशन।

पिटीशनरों की ओर से
(1977 के रिट पिटीशन संख्या 712, 715, 739, 874-892 और 861-873 में)

श्री ए० के० सेन (रिट पिटीशन संख्या 712 में) श्री वी० एम० तारकुण्डे (रिट पिटीशन संख्या 715 से 739 में) श्री जे० एल० नैन (रिट पिटीशन संख्या 861 से 892) और श्री पी० पी० जुनेजा

पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 760-764 और 765-770 में)	श्री डी० गोवर्धन
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 779-780 में)	श्री ए० के० सेन (रिट पिटीशन संख्या 779-780 में) सर्वश्री एस० बी० सान्याल, अजीत के० मित्तर और पी० के० मुखर्जी
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 781-784 में)	सर्वश्री डी० पी० मुखर्जी और ए० के० गंगुली
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 838-855 में)	सर्वश्री एस० एस० रे, ए० के० पुंजा और एच० के० पुरी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस० एन० कक्कड़, महा-सालिसिटर (रिट पिटीशन संख्या 712 और 838 में) श्री आर० पी० भट्ट (रिट पिटीशन संख्या 861 में) और सर्वश्री ई० सी० अग्रवाल तथा गिरीश चन्द्र
प्रत्यर्थी बिहार राज्य की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 765-770, 781-784 में)	सर्वश्री एल० एन० सिन्हा और यू० पी० सिंह
प्रत्यर्थी पश्चिमी बंगाल राज्य की ओर से	श्री ए० पी० चैटर्जी, श्रीमती मुक्ति मैत्रा और श्री जी० एस० चटर्जी

अभिलेख अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 712, 715-739, 874-892 और 861-873, 896-898 और 899-901 में)	श्री पी० पी० जुनेजा
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 760-764 और 765-770 में)	श्री डी० गोबर्धन
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 779-780 में)	श्री पी० के० मुखर्जी
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 781-784 में)	श्री डी० पी० मुखर्जी
पिटीशनरों की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 838-855 में)	श्री एच० के० पुरी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री गिरीश चन्द्र
प्रत्यर्थी बिहार राज्य की ओर से (1977 के रिट पिटीशन संख्या 765-770, 781-784 में)	श्री यू० पी० सिंह
प्रत्यर्थी पश्चिमी बंगाल राज्य की ओर से	श्री जी० एस० चटर्जी

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई की ओर से मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग के मतानुसार

मुख्य न्यायाधिपति बेग—

हमारे समक्ष इन 91 रिट पिटीशनों में, जिनमें कि हमें उन्हें खारिज करते हुए तारीख 23 नवम्बर, 1977 वाले अपने आदेश के

समर्थन में कारण देते हैं, भारत सरकार के सिविल सम्भरण और सहकारिता मंत्रालय द्वारा पारित तारीख 30 दिसम्बर, 1977 वाले आदेश की (जिसे इसमें इसके पश्चात्, 'नियंत्रण आदेश' कहा गया है) विधिमान्यता के सम्बन्ध में एक सामान्य प्रश्न उत्पन्न हुआ था। नियंत्रण आदेश इस प्रकार है :—

***"आदेश"**

नई दिल्ली, 30 सितम्बर, 1977

का० आ० .... :—यतः केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि सरसों के तेल का साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उसकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक और समीचीन है ;

अतः आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (1955 का 10) की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार एतद्द्वारा निम्नलिखित आदेश करती है, अर्थात् :—

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** : (1) इस आदेश का नाम सरसों का तेल (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1977 होगा।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

***"ORDER"**

New Deihi the 30th September, 1977

S.O. WHEREAS the Central Government is of opinion that it is necessary and expedient so to do for securing equitable distribution and availability at fair prices, of mustard oil;

NOW, THEREFORE, in exercise of the powers conferred by section 3 of the Essential Commodities Act, 1955 (10 of 1955), the Central Government hereby makes the following orders, namely :—

1. **Short title, extent and commencement** : (1) This order may be called the Mustard Oil (Price Control) Order 1977.

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है।

(3) यह तुरन्त प्रवृत्त होगा।

2. **परिभाषा** : इस आदेश में 'व्यवहारी' से सरसों के तेल के क्रय, विक्रय या विक्रय के लिए भण्डार करने के कारवार में लगा हुआ कोई व्यक्ति अभिप्रेत है।

3. **वह कीमत जिस पर व्यवहारी विक्रय कर सकेगा** : कोई भी व्यवहारी स्वयं या अपनी ओर से किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से 10 रुपये प्रति किलोग्राम से, जिसमें पात्र की कीमत सम्मिलित नहीं है, किन्तु कर शामिल हैं, अधिक की खुदरा कीमत पर सरसों के तेल का विक्रय नहीं करेगा या विक्रय के लिए प्रस्थापना नहीं करेगा।

हस्ता०-

(टी० बालकृष्णन्)

संयुक्त सचिव, भारत सरकार।

[फाईल संख्या 26(16)/77-ई०सी०आर०]"

---

(2) It extends to the whole of India.

(3) It shall come into force at once.

2. **Definition** : In this Order 'dealer' means a person engaged in the business of the purchase, sale or storage for sale of mustard oil.

3. **Price at which a dealer may sell.** No dealer shall either by himself or by any person on his behalf, sell or offer to sell any mustard oil at a retail price exceeding Rs. 10/-per Kilogram, exclusive of the cost of container but inclusive of taxes.

Sd/-

(T. Balakrishnan)

Joint Secretary to the Govt. of India

[File No. 26 (16)/77-ECR]"

2. यह नियंत्रण आदेश आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 3 द्वारा केन्द्रीय सरकार को प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में पारित किया गया था। इस उपबन्ध में इस प्रकार अधिकथित किया गया है--

"3(1) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उसका साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उसकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने के लिए अथवा भारत की रक्षा के लिए या सैनिक संक्रियाओं के दक्ष संचालन के लिए किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह आदेश द्वारा उसके उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसमें व्यापार और वाणिज्य के विनियमन या प्रतिषेध के लिए उपबन्ध कर सकेगी।

(2) उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, तदधीन किए गए आदेश द्वारा निम्नलिखित का उपबन्ध किया जा सकेगा--

(क) ....

(ख) ....

(ग) ऐसी कीमत नियंत्रित करना जिस पर किसी आवश्यक वस्तु का क्रय या विक्रय किया जा सकेगा;

(घ) किसी आवश्यक वस्तु के भण्डारकरण, परिवहन, वितरण, व्ययन, अर्जन, प्रयोग या खपत का अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों द्वारा या अन्यथा विनियमन;

(ङ) सामान्यतः विक्रय के लिए रखी गई किसी आवश्यक वस्तु को विक्रय से रोक रखने का प्रतिषेध;

(च) किसी व्यक्ति से, जो किसी आवश्यक वस्तु को स्टाक में रखता है या उसके उत्पादन में या उसके क्रय या विक्रय के कारबार में लगा हुआ है, यह अपेक्षा करना है कि वह--

(क) उस सम्पूर्ण मात्रा या उसके विनिर्दिष्ट भाग का जिसे वह स्टाक में रखता है या जिसका

उसने उत्पादन किया है या जिसे उसने प्राप्त किया है, अथवा

(ख) किसी ऐसी वस्तु की दशा में, जिसका वह सम्भवतः उत्पादन करेगा या जिसे वह सम्भवतः प्राप्त करेगा, उसके द्वारा उत्पादन या प्राप्त करने पर उस सम्पूर्ण वस्तु या उसके विनिर्दिष्ट भाग का,

केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार को या ऐसी सरकार के किसी अधिकारी या अभिकर्ता को या ऐसी सरकार के स्वामित्वाधीन या उसके द्वारा नियंत्रित किसी निगम को या ऐसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को और ऐसी परिस्थितियों में जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, विक्रय करे ।

स्पष्टीकरण 1—खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों के सम्बन्ध में इस खण्ड के अधीन किए गए किसी आदेश द्वारा सम्बन्धित क्षेत्र में ऐसे खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों के प्राक्कलित उत्पादन को ध्यान में रखते हुए, ऐसे क्षेत्र में उत्पादकों द्वारा विक्रय की जाने वाली मात्रा नियत की जा सकेगी और श्रेणी के आधार पर ऐसी मात्रा उत्पादकों द्वारा धृत या उनकी जोत के कुल क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए भी नियत की जा सकेगी या उसके नियतन के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण 2—इस खण्ड के प्रयोजन के लिए, 'उत्पादन' के अन्तर्गत, उसके व्याकरणिक रूपभेदों और सजातीय पदों सहित, खाद्य तेलों और चीनी का विनिर्माण भी है ।"

यहां पर हमारा सम्बन्ध धारा 3(2) के अन्य उपबन्धों से नहीं है । धारा 3(3), जो कि निर्वचन के उद्देश्यों के लिए सुसंगत होगी, इस प्रकार है—

"3(3) जहां कोई व्यक्ति किसी आवश्यक वस्तु का विक्रय उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रति निर्देश से किए गए किसी

1978(2) eILR(PAT) SC 1

आदेश के अनुपालन में करता है वहां उसके लिए उसे ऐसी कीमत दी जाएगी जो इसमें इसके पश्चात् उपबन्धित है:—

(क) जहां कीमत, इस धारा के अधीन नियत नियंत्रित कीमत से यदि कोई हो, संगत रह कर करार पाई जा सकती है वहां वह करार पाई गई कीमत ;"

(ख) जहां ऐसा कोई करार नहीं हो सकता वहां नियंत्रित कीमत के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश से परिकलित कीमत ;

(ग) जहां न तो खण्ड (क) और न खण्ड (ख) ही लागू होता है वहां उस परिक्षेत्र में विक्रय की तारीख को अभिभावी बाजार दर पर परिकलित कीमत ।

इसके अलावा उपधारा (3क) में निम्नलिखित अधिकथित किया गया है—

"(3क) (i) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि किसी परिक्षेत्र में किन्हीं खाद्य पदार्थों में कीमतों के चढ़ाव को नियंत्रित करने या उनमें जमाखोरी को निवारित करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है तो वह शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगी कि उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, वह कीमत, जिस पर कि उस परिक्षेत्र में खाद्य पदार्थ का विक्रय उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रति निर्देश से किए गए आदेश के अनुपालन में किया जाएगा इस उपधारा के उपबन्धों के अनुसार विनियमित की जाएगी ।"

(ii) इस उपधारा के अधीन जारी की गई कोई अधिसूचना तीन मास से अनधिक की ऐसी कालावधि के लिए प्रवृत्त रहेगी जैसी उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट हो ।

(iii) जहां इस उपधारा के अधीन अधिसूचना के जारी होने के पश्चात् कोई व्यक्ति उसमें विनिर्दिष्ट प्रकार के खाद्य पदार्थ का, और ऐसे विनिर्दिष्ट परिक्षेत्र में, विक्रय उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रति निर्देश से किए गए किसी आदेश के अनु-

पालन में करता है वहां उसके लिए विक्रेता को निम्नलिखित कीमत दी जाएगी––

(क) जहां कीमत, इस धारा के अधीन नियत खाद्य पदार्थ को नियंत्रित कीमत से, यदि कोई हो, संगत रहकर करार पाई जा सकती है वहां वह करार पाई गई कीमत ;

(ख) जहां ऐसा कोई करार नहीं हो सकता वहां नियंत्रित कीमत के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश से परिकलित कीमत ;

(ग) जहां न तो खण्ड (क) और न खण्ड (ख) ही लागू होता है वहां अधिसूचना की तारीख के ठीक पूर्वगामी तीन मास की कालावधि के दौरान उस परिक्षेत्र में अभिभावी औसत बाजार दर के प्रति निर्देश से परिकलित कीमत ।

(iv) खण्ड (iii) के उपखण्ड (ग) के प्रयोजनों के लिए उस परिक्षेत्र में अभिभावी औसत बाजार दर का अवधारण इस निमित केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा उस परिक्षेत्र की या पड़ोस के परिक्षेत्र की बाबत अभिभावी ऐसे बाजार दरों के प्रति निर्देश से किया जाएगा जिसके लिए प्रकाशित आंकड़े उपलभ्य हैं, और ऐसे अवधारित औसत बाजार दर अन्तिम होंगे और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किए जाएंगे ।"

3. धारा 3(2) के ठीक अर्थ को जानने के लिए उपधारा (3ख) और (3ग) पर विचार करना भी अपेक्षित होगा । ये इस प्रकार हैं––

"(3ख) जहां उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रति निर्देश से किए गए किसी आदेश द्वारा किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा की गई है कि वह केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार को या ऐसी सरकार के किसी अधिकारी या अभिकर्ता को अथवा ऐसी सरकार के स्वामित्वाधीन या उसके द्वारा नियंत्रित किसी निगम को, किसी ऐसी श्रेणी या किस्म के खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों का, विक्रय करे जिनके सम्बन्ध में उपधारा

(क) के अधीन या तो कोई अधिसूचना निकाली ही नहीं गई है या ऐसी अधिसूचना निकाली गई है किन्तु प्रवृत नहीं है, वहां सम्बन्धित व्यक्ति को, उपधारा (3) में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, उतनी रकम का संदाय, जो राज्य सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट, यथास्थिति, ऐसे खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों की वसूली कीमत के बराबर हो, निम्नलिखित बातों का ध्यान रखते हुए किया जाएगा:

(क) यदि ऐसी श्रेणी या किस्म के खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों के लिए कोई नियंत्रित कीमत इस धारा के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन नियत की गई है तो उस कीमत का;

(ख) फसल की साधारण सम्भावनाओं का;

(ग) उपभोक्ताओं को, विशेष रूप से उपभोक्ताओं के दुर्बल वर्गों को, ऐसी श्रेणी या किस्म के खाद्यान्न, खाद्य तिलहन या खाद्य तेल युक्तियुक्त कीमत पर उपलब्ध कराने की आवश्यकता का; और

(घ) यदि सम्बन्धित श्रेणी या किस्म के खाद्यान्नों, खाद्य तिलहनों या खाद्य तेलों की कीमत के सम्बन्ध में कृषि मूल्य आयोग की सिफारिशें हैं तो उन सिफारिशों का।

(3ग) जहां उपधारा (2) के खण्ड (च) के प्रति निर्देश से किए गए किसी आदेश द्वारा किसी उत्पादक से यह अपेक्षा की गई है कि वह किसी प्रकार की चीनी (चाहे केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या ऐसी सरकार के किसी अधिकारी या अभिकर्ता को या किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को) विक्रीत करे और ऐसी चीनी की बाबत उपधारा (3क) के अधीन या तो कोई अधिसूचना निकाली ही नहीं गई है या ऐसी कोई अधिसूचना निकाली जाकर समय के बीत जाने से प्रवृत्त नहीं रही है वहां, उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, उसके लिए उस उत्पादक को वह रकम दी जाएगी जो

1978(2) eILR(PAT) SC 1

चीनी की ऐसी कीमत के प्रति निर्देश से परिकलित की जाएगी जैसी केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित को ध्यान में रखते हुए आदेश द्वारा अवधारित करे—

(क) न्यूनतम कीमत, यदि कोई हो, जो इस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा गन्ने के लिए नियत की गई हो ;

(ख) चीनी की विनिर्माण लागत ;

(ग) वह शुल्क या कर, यदि कोई हो, जो उस पर संदत्त किया गया है या संदेय हो ; और

(घ) चीनी विनिर्माण के कारबार में लगाई गई पूंजी पर युक्तियुक्त प्रत्यागम का सुनिश्चयन,

और विभिन्न क्षेत्रों के लिए या विभिन्न कारखानों के लिए अथवा विभिन्न प्रकार की चीनी के लिए समय-समय पर विभिन्न कीमतें अवधारित विभिन्न की जा सकेंगी।

स्पष्टीकरण—इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'उत्पादक' से चीनी विनिर्माण का कारबार करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत है।"

4. कीमत नियंत्रण की शक्ति के कानूनी सन्दर्भ को ठीक-ठीक समझने के लिए धारा 3 के अन्य खण्डों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। वे कठोर अध्युपाय भी महत्वपूर्ण हैं जो केन्द्रीय सरकार अपनी शक्ति को किन्हीं विशिष्ट उपक्रमों के लिए प्राधिकृत नियंत्रक नियुक्त करके उनके प्रबन्ध को ग्रहण करने तक विस्तारित करते हुए कर सकती है जिससे कि अधिनियम की धारा 3(1) में कथित उद्देश्यों को पूरा किया जा सके और कानूनी शक्तियों का सम्यक् और उचित प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए परिकल्पित नियंत्रण की प्रक्रिया का अनुसरण किया जा सके। इन बातों को अन्तर्विष्ट करने वाले उपबन्ध इस प्रकार हैं:—

"3(4) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन और प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए ऐसा करना आवश्यक है तो वह आदेश द्वारा

किसी व्यक्ति को (जो इसके पश्चात् इसमें प्राधिकृत नियंत्रक के रूप में निर्दिष्ट है) उस वस्तु के उत्पादन और प्रदाय में संलग्न किसी ऐसे उपक्रम या उसके किसी भाग की बाबत जैसा कि उस आदेश में विनिर्दिष्ट हो, नियंत्रण के ऐसे कृत्यों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी जैसे उसमें उपबन्धित किए जाएं और जब तक ऐसा आदेश किसी उपक्रम या उसके भाग की बाबत प्रवृत है––

(क) जो भी अनुदेश प्राधिकृत नियंत्रक को केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाएं उनके अनुसार वह अपने कृत्यों का प्रयोग करेगा किन्तु इस प्रकार कि उसे उपक्रम के प्रबन्ध के भारसाधक व्यक्तियों के कृत्यों का अवधारण करने वाली किसी अधिनियमिति या किसी लिखत के उपबन्धों से असंगत कोई निदेश वहां तक के सिवाए, जहां तक कि आदेश द्वारा विनिर्दिष्टतया उपबन्धित हो, देने की शक्ति नहीं होगी ; और

(ख) आदेश के उपबन्धों के अधीन प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा जो भी निदेश दिए जाएं उनके अनुसार उपक्रम या उसके भाग को चलाया जाएगा और उस उपक्रम या उस भाग के सम्बन्ध में प्रबन्ध के किन्हीं कृत्यों से सम्बद्ध कोई भी व्यक्ति ऐसे सभी निदेशों का अनुपालन करेगा ।

3(5) इस धारा के अधीन किया गया कोई आदेश––

(क) सामान्य प्रकार के या व्यक्तियों के किसी वर्ग को प्रभावित करने वाले आदेश की दशा में, शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया जाएगा, और

(ख) किसी विनिर्दिष्ट व्यष्टि को निर्दिष्ट आदेश की दशा में, ऐसे व्यष्टि पर––

(i) उस व्यष्टि को देकर या देने के लिए प्रस्तुत करके तामील किया जाएगा, या

(ii) यदि वह इस प्रकार दिया या देने के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तो उसे उन

परिसरों के जिनमें वह व्यष्टि रहता है बाहरी दरवाजे या किसी अन्य सहजदृश्य भाग पर लगाकर तामील किया जाएगा और उसकी एक लिखित रिपोर्ट तैयार की जाएगी और पड़ोस में रहने वाले दो व्यक्तियों द्वारा साक्षित की जाएगी ।

3(6) केन्द्रीय सरकार द्वारा या केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन किया गया हर एक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा ।"

5. यह बात भी स्मरण रखी जानी है कि यदि कुछ आवश्यक वस्तुओं की बाबत कीमत नियंत्रण की प्रक्रिया विफल हो जाती है तो हमारे संविधान के अधीन उसके समाजवादी स्वरूप और उद्देश्यों सहित अनुच्छेद 19(6)(ii) में "राज्य के द्वारा अथवा राज्य के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन वाले निगम द्वारा कोई व्यापार, कारबार, उद्योग या सेवा नागरिकों का पूर्णतया या आंशिक अपवर्जन करके या अन्यथा चलाने का" भी उपबन्ध किया गया है ।

6. पिटीशनरों ने नियंत्रण आदेश पर 4 आधारों पर आक्षेप किया है: प्रथम यह कि वह पिटीशनरों के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) के अधीन सम्पत्ति के तथा अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारण्टीकृत अपना व्यापार या कारबार चलाने के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है ; दूसरे पिटीशनरों को संविधान के अनुच्छेद 14 के फायदों से वंचित रखा गया है ; तीसरे इस आदेश से संविधान के अनुच्छेद 301 का अतिलंघन होता है ; और चौथे, केन्द्रीय आदेश अधिनियम की धारा 3 के क्षेत्र के बाहर है ।

7. हमें संविधान के अनुच्छेद 301 पर विचार करने की जरूरत नहीं है क्योंकि पिटीशनों में उस उपबन्ध को उदधृत करने के अतिरिक्त यह दर्शित करने के लिए कोई अन्य तथ्य उपवर्णित नहीं किए गए हैं कि यह अनुच्छेद किस प्रकार अन्तर्वलित है । यह अनुच्छेद अन्तर्राज्यिक तथा राज्य के भीतर व्यापार, वाणिज्यक या समागम की स्वतन्त्रता के

1978(2) eILR(PAT) SC 1

संरक्षण के लिए है किन्तु अनुच्छेद 302 में यह उपबन्ध किया गया है कि :

"संसद् विधि द्वारा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा भारत राज्यक्षेत्र के किसी भाग के भीतर व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतन्त्रता पर ऐसे निर्बन्धन आरोपित कर सकेगी जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हों ।"

8. यद्यपि अनुच्छेद 302 में 'युक्तियुक्त' निर्बन्धनों का कोई उल्लेख नहीं है, तथापि यह स्पष्ट है कि उसके द्वारा अनुध्यात निर्बन्धनों का 'लोक-हित' साधन की जरूरत के साथ युक्तियुक्त सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए । यदि किसी आदेश द्वारा अधिनियम की धारा 3 में अधिकथित कसौटियों को पूरा कर दिया जाता है तो वह लोकहित साधन में विफल नहीं होगा । अतः इस दृष्टिकोण से भी केवल इस बात पर विचार करना पर्याप्त होगा कि क्या नियंत्रण आदेश अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत आता है । स्पष्ट है कि पिटीशनरों के काउन्सेल ने इसी कारण से अनुच्छेद 301 का उल्लेख मात्र करने के सिवाय यह दर्शित करने के लिए अधिक तर्क नहीं दिया था कि इस मामले में धारा 301 किस प्रकार अन्तर्वलित है और ऐसा करना सर्वथा उचित था । अतः हम इस बारे में और अधिक विचार नहीं करेंगे ।

9. किन्तु, पिटीशनरों की ओर से इस बात का बल पूर्वक तर्क दिया गया था कि, इस तथ्य के बावजूद भी कि अधिनियम स्वयं ही 1976 में संविधान की नवम् अनुसूची में रख दिया गया था, नियंत्रण आदेश पर इस आधार पर आक्षेप किया जा सकता है कि वह अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) तथा (छ) का अतिक्रमण करता है । अधिनियम को एक सांविधानिक संशोधन द्वारा नवम् अनुसूची में रख देने के परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 3 संविधान के भाग 3 के उपबन्धों पर आधारित किन्हीं परिसीमाओं से मुक्त हो जाती है । संविधान के भाग 3 द्वारा दिए गए मूल अधिकारों के संरक्षण को हटाने का उपबन्ध करते हुए अनुच्छेद 31(ख) में इस प्रकार अधिकथित किया गया है—

"31ख. कतिपय अधिनियमों और विनियमों का मान्यकरण—अनुच्छेद 31क में अन्तर्विष्ट उपबन्धों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नवम् अनुसूची में उल्लिखित अधिनियमों और

विनियमों में से और उनके उपबन्धों में से कोई इस आधार पर शून्य या कभी शून्य हुआ न समझा जायेगा कि वह अधिनियम, नियम या उपबन्ध इस भाग के किन्हीं उपबन्धों द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है अथवा उसे छीनता या न्यून करता है, और किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के किसी प्रतिकूल निर्णय आज्ञप्ति, या आदेश के होते हुए भी, उक्त अधिनियमों और विनियमों में से प्रत्येक, उसे निरसित या संशोधित करने की किसी सक्षम विधानमंडल की शक्ति के अधीन रहते हुए, प्रवृत्त बना रहेगा।"

10. यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 31ख केवल उन अधिनियमों और विनियमों का ही संविधान के भाग 3 के उपबन्धों से असंगत होने के कारण अवैधता के दोष से संरक्षण करता है जो नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट है न कि इस प्रकार विनिर्दिष्ट किसी अधिनियम के उपबन्धों के अधीन की गई या भविष्य में की जाने वाली किसी बात का, जैसे कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित आदेश का संरक्षण करता है।

11. यदि अधिनियम की धारा 3 के बारे में **श्री हरि कृष्ण बागला** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसे अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) और (छ) सपठित अनुच्छेद 19(5) और (6) द्वारा अधिरोपित विधिमान्यता की कसौटियों को पूरा करना होता है, तो धारा 3 के अधीन पारित नियंत्रण आदेश से भी यह अपेक्षा की जायेगी कि वह इन कसौटियों को पूरा करे क्योंकि उसका क्षेत्र उन उपबन्धों से अधिक व्यापक नहीं हो सकता जो उसका प्रख्यापित किया जाना प्राधिकृत करते हों। कोई प्रत्यायोजित या व्युत्पन्न शक्ति उस शक्ति के स्रोत से अधिक या बाहर नहीं हो सकती है जिससे वह प्राधिकार और बल प्राप्त करती है। यदि **बागला वाला मामला**[1] उचित विधि है, (किसी भी पक्षकार ने इसके औचित्य को चुनौती नहीं दी है) तो अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) और (छ) के बारे में यह समझा जा सकता है कि उनकी अपेक्षायें स्वयं अधिनियम की धारा 3 में ही समाविष्ट हैं। वे उन आदेशों के क्षेत्र को नियंत्रित करेंगे जो कि इसके अधीन पारित किये जा सकते हैं। निःसंदेह यदि धारा 3 को

---

[1] (1955) 1 एस० सी० आर० 380.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

अन्तर्विष्ट करने वाले अधिनियम को ही मूल अधिकारों की गारण्टी को छीनने के लिये नवम् अनुसूची में न रखा गया हो तो मूल अधिकारों की गारण्टियां इसी प्रकार से कृत्यशील हो सकती हैं और इसी प्रकार से उन्हें कृत्यशील होना चाहिये ।

12. हमारे समक्ष निर्वचन के लिये प्रश्न यह है कि अधिनियम को नवम् अनुसूची में शामिल करने का अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित नियंत्रण आदेश पर क्या प्रभाव पड़ा है ? इस प्रश्न का उत्तर इस विधिक स्थिति के परिवर्तन के धारा 3 के उपबन्धों पर प्रभाव पर ही अनिवार्यतः निर्भर करेगा जोकि इसके अधीन पारित नियंत्रण आदेश को प्राधिकृत करते हैं । यदि उसका प्रभाव अधिनियम की धारा 3 के क्षेत्र को व्यापक करना हो या अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा उसके अधीन शक्तियों के प्रयोग पर लगाई गई परिसीमाओं को हटाने का हो तो इसका विधिसम्मत और स्वाभाविक परिणाम उसके अधीन पारित आदेशों के क्षेत्र और विस्तार को भी बढ़ाना होगा किन्तु, यदि अधिनियम की धारा 3 पर इसका ऐसा कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो उसके अधीन पारित आदेश संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा यथा नियंत्रित अधिनियम की धारा 3 के उपबन्धों के अध्यधीन बने रहेंगे जिससे कि उन्हें 'दोहरी कसौटी' पर खरा उतरना होगा, प्रथमतः स्वयं अधिनियम की धारा 3 के उपबन्धों को कसौटी और दूसरे मूल अधिकारों को अन्तर्विष्ट करने वाले संविधान के अध्याय 3 के उपबन्धों की कसौटी पर खरा उतरना होगा ।

13. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने यह सुझाव दिया है कि अधिनियम को नवम् अनुसूची में शामिल करने से केवल अधिनियम की धारा 3 के अधीन शक्तियां प्रदान किये जाने का संरक्षण होता था न कि उनके प्रयोग का । निःसन्देह अनुच्छेद 31ख में 'विनिर्दिष्ट' अधिनियमों और विनियमों का उल्लेख है । तथापि इसमें शक्तियों के प्रदान किये जाने और उनके प्रयोग के बीच किसी प्रकार का कोई प्रभेद नहीं किया गया है । शक्तियां इसीलिये अनुदत्त या प्रदत्त की जाती हैं कि उनका प्रयोग किया जा सके न कि इसलिये कि उन्हें दिखावे के लिये निष्क्रिय रखा जा सके मानों कि वे केवल दिखावटी प्रदर्श हों जो वास्तविक प्रयोग के लिये आशयित न हों । वास्तविक प्रयोग के लिये आशयित शक्तियों के लिये प्रदत्त संरक्षण का सम्पूर्ण उद्देश्य ही भाग 3 के उपबन्धों के आधार

पर उनकी विधिमान्यता पर किये जाने वाले आक्षेपों के विरुद्ध संरक्षण करना है । यदि यही सही स्थिति है तो स्वाभाविक और तर्कसम्मत रूप से यही निष्कर्ष निकलेगा कि उनके प्रयोग का ही वस्तुत: संरक्षण किया गया है ।

14. व्यवहार में, शक्ति के प्रयोग पर ही साधारणत: आक्षेप किया जाता है न कि उसके प्रदत्त किये जाने मात्र पर जिससे कि विधायी क्षमता विषयक एक भिन्न प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है । वास्तव में नवम् अनुसूची अत्यधिक प्रत्यायोजन की त्रुटि या विधायी सक्षमता के अभाव पर, जोकि ऐसी त्रुटियां हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि वे अधिनियम के नवम् अनुसूची में रखे जाने के बावजूद भी शक्तियों के प्रदान को दूषित बना देती हैं, आधारित आक्षेपों के विरुद्ध किसी प्रकार का कोई संरक्षण प्रदान नहीं करती हैं । किन्तु मूल अधिकारों से विरोध और उनके प्रयोग पर विधिसम्मत या युक्तियुक्त परिसीमाओं के अतिक्रमण विषयक प्रश्न उस दशा में उत्पन्न होते हैं जबकि नागरिक अपने मूल अधिकारों के प्रयोग में युक्तियुक्त रुकावटों का परिवाद करें । अत: केवल शक्तियों के दिये जाने के बारे में ही दिखावटी और उनके प्रयोग के बारे में संरक्षण के बीच प्रभेद, संरक्षण के सन्दर्भ में दिखावटी प्रतीत होता है । इससे यह बात स्पष्ट नहीं हो सकती है कि यदि नवम् अनुसूची द्वारा धारा 3 का संरक्षण होता है तो उसके द्वारा अनुदत्त शक्ति का प्रयोग, जो कि नियंत्रण आदेशों में प्रकट होती है, संरक्षित क्यों नहीं होता है । इस प्रकार का संरक्षण, यदि किया जाना है तो, इसलिये नहीं होगा कि इस रूप में भविष्य में किये जाने वाले आदेशों का संरक्षण किया गया है अपितु इसलिये होगा कि वस्तुत: प्रदत्त और धारा 3 में विद्यमान पाई गई शक्ति को संरक्षित किया गया है। ऐसी शक्ति का संरक्षण किया जाता है जो कि विनिर्दिष्ट है और विद्यमान है तथा जिसका प्रयोग कतिपय प्रयोजनों के लिये किया जाना है न कि किसी ऐसी शक्ति का जो भविष्य में विनिर्दिष्ट की जाये।

15. यदि अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित आदेशों को भी संरक्षण मिल जाता है तो इसे, यदि आदेश अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत आते हों तो 'व्युत्पन्न' (डेरिवेटिव) संरक्षण के रूप में वर्णित किया जा सकता है । यह संरक्षण केवल तभी और इसी कारण से उपलब्ध

होता है कि उनके प्राधिकार के स्रोत—अधिनियम की धारा 3 का नवम् अनुसूची द्वारा संरक्षण होता रहता है। तथापि अधिनियम की धारा 3 के अधीन बनाये गये तात्पर्यित आदेशों को प्रत्येक मामले में स्वयं धारा 3 में ही दी गई कसौटियों पर अवश्य खरा उतरना होगा। उनके प्राधिकार के स्रोत, धारा 3 का नवम् अनुसूची द्वारा संरक्षण किया जाये या नहीं, वे आधारभूत कसौटियों से कदापि नहीं बच सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा धारा 3 में समाविष्ट की गई अतिरिक्त कसौटियों को इन आदेशों को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब कि ये अतिरिक्त कसौटियां अधिनियम की धारा 3 से संबंधित की जा सकें या उनका धारा 3 में अनुमान लगाया जा सके न कि उनके धारा 3 से जानबूझकर असम्बद्ध कर दिये जाने या हटा दिये जाने के पश्चात् भी यदि नवम् अनुसूची में अधिनियम के शामिल किय जाने के प्रभाव को इस रूप में वर्णित किया जाये।

16. महान्यायवादी ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 3 विधान की रूपरेखा गठित करती थी जिस पर धारा 3 द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग आधारित था। जिसे उन्होंने उसके 'सार' के रूप में वर्णित किया है। विधान की 'रूपरेखा' पद कभी-कभी किसी अधिनियम में पाई जाने वाली स्कीम विशेष की मोटी रूपरेखा उपलक्षित करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है जिसके विवरण बाद में विशेषज्ञों के प्रशासनिक आदेशों द्वारा दिये जाने होते हैं। यह बात सन्देहास्पद है कि क्या आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 को विधान की रूपरेखा के रूप में वर्णित किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) में केन्द्रीय सरकार की शक्तियों के प्रत्यायोजन के लिये उपबन्ध किया गया है जिससे कि वह समुचित स्कीमें बनाकर और नीतियां तैयार करके कुछ प्रयोजनों को क्रियान्वित कर सके जिससे अधिनियम के प्रयोजन पूरे हो सकें। कथित प्रयोजनों में साधक होने के लिये ये स्कीमें और नीतियां अपनाये जाने वाले साधनों के स्वरूप की बाबत तथा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप होने के लिये किसी समय विशेष पर प्राप्त किये जाने वाले विशिष्ट उद्देश्यों के लिये भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

17. ऐसी स्कीमों और नीतियों के अनुसरण में अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित आदेश संविधान की नवम् अनुसूची के प्रयोजनों

1978(2) eILR(PAT) SC 1

के लिये अधिनियमों के भाग नहीं बन सकते हैं । **गोदावरी शुगर मिल्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **एस० बी० काम्बले और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत के आधार पर, जिससे कि हम आदर सहित सहमत हैं, अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि नवम् अनुसूची में सम्मिलित किये जाने के पूर्व अधिनियम के अधीन पारित आदेशों के बारे में भी यदि उसमें उनका उल्लेख हो तो, यह कहा जा सकता है कि उनका नवम् अनुसची द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संरक्षण होता है। किन्तु इस अनुसूची द्वारा हमारे समक्ष के अधिनियम के अधीन पारित आदेशों को उसी प्रकार कोई स्वतन्त्र और प्रत्यक्ष संरक्षण नहीं दिया जा सकता है जिस प्रकार कि किसी अधिनियम में किये गये संशोधनों या उसके अधीन पारित विनियमों को, जिन पर कि **गोदावरी शुगर मिल्स वाले मामले**[1] में विचार किया गया था, नहीं दिया जा सकता था।

18. जैसा कि पहले ही ऊपर उपदर्शित किया गया है, आक्षेपित नियंत्रण आदेश पर मुख्य रूप से इस आधार पर आक्षेप किया गया है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) और (छ) का अतिक्रमण होता है । यह अभिकथित किया गया है कि तेल के विनिर्माताओं ने सरसों के तेल के विनिर्माण के उद्योग में काफी पूंजी विनियोजित कर दी थी और उन कीमतों से बहुत अधिक कीमतों पर तिलहन खरीदा था जो कि सरकार ने उपभोक्ताओं के लिये सरसों के तेल की कीमतों को नियत करते समय ध्यान में रखी है, इसलिये उन्हें उस तेल को, जो कि तिलहन से बनाया गया है, उन कीमतों से कम पर बेचने के लिये विवश नहीं किया जा सकता जिन पर वे स्वयं भी तेल उत्पादित नहीं कर सकते थे । यह निवेदन किया गया है कि उनसे ऐसा करने की अपेक्षा करना विधि के विरुद्ध सम्पत्ति के अधिहरण और साथ ही संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन अयुक्तियुक्त निर्बन्धनों के बिना कोई उद्योग या व्यापार करने के लिए उन्हें गारण्टीकृत अधिकार पर निर्बन्धन की कोटि में आता है । यह निवेदन किया गया है कि विधिसम्मत निर्बन्धन केवल युक्तियुक्त तथा सार्वजनिक हित में ही हो सकते हैं । यह सुझाव दिया गया था कि विधि के प्रतिकूल सम्पत्ति से वंचित करने से अनुच्छेद 31(1) का संरक्षण भी इसमें अन्तर्वलित है।

---

[1] (1975) 3 एस० सी० आर० 885=[1975] 3 उम० नि० प० 478.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

अतः विनिश्चित किया जाने वाला मुख्य प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित नियंत्रण आदेश की विधिमान्यता को परखने के लिये संविधान का भाग 3 किसी तरह से उपलब्ध हो सकता है ।

19. **लताफत अली खां और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने ऐसे ही एक प्रश्न पर (पृष्ठ 720 पर) निम्नलिखित विनिश्चय किया था जो कि हमारे विचार में पूर्णतया सही है:—

> "हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कोई कानूनी नियम अनुच्छेद 31ख द्वारा संरक्षित किसी कानून की किसी धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत आता है तो यह कहना कठिन है कि उस नियम की अनुच्छेद 14, 19 आदि के अधीन और अधिक संवीक्षा की जानी होगी । हमें ऐसा प्रतीत होता है कि नियम 4(4) ऐसा नियम है जो अधिनियम की धारा 44 के साथ पठित धारा 6(XVii) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के बाहर नहीं है । किसी भी दशा में धारा 6(XVii) और नियम 4(4) उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार स्कीम के भाग हैं और इनका संविधान के अनुच्छेद 31क के अधीन आक्षेप से संरक्षण होगा ।"

उस मामले में उत्तर प्रदेश के इम्पोजीशन ऑफ सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्स ऐक्ट, 1960 के उपबन्धों के अधीन बनाये गये नियम पर आक्षेप किया गया था। जिस धारा के अधीन यह नियम बनाया गया था उसे संविधान के अनुच्छेद 31क और ख दोनों का ही संरक्षण प्राप्त था इसलिये यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि वह नियम अधिनियम के सशक्त करने वाले उपबन्ध के अन्तर्गत आता है तो उसे प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । हमारे समक्ष की स्थिति भी इसी तरह की है । हमारे समक्ष के अधिनियम की, जो कि नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया है, धारा 3 के उपबन्धों के अधीन पारित नियंत्रण आदेश पर, इस आधार पर आक्षेप किया गया है कि यद्यपि धारा 3 का नवम् अनुसूची द्वारा संरक्षण हो जाता है तथापि इस उपबन्ध के अधीन पारित आदेश का इस प्रकार संरक्षण नहीं होता है । यद्यपि हम इस बात से सहमत हैं कि इस कारण से आक्षेपित आदेश का संरक्षण नहीं

[1] (1971) सप्लीमेन्ट एस० सी० आर० 719, 720.

होता है तथापि यदि उस धारा का जिसके अधीन वह पारित किया गया था, संविधान के भाग 3 के उपबन्धों पर आधारित किसी आक्षेप से संरक्षण हो जाता है तो केवल मात्र प्रश्न यह बचता है कि क्या नियंत्रण आदेश उन सशक्त करने वाले उपबन्धों के अन्तर्गत आ जाता है जिनका संरक्षण किया गया है । यदि वह सशक्त करने वाले उपबन्धों के बाहर है तो किसी भी दशा में वह अविधिमान्य होगा । यदि वह सशक्त करने वाले उपबन्धों के अन्तर्गत आता है किन्तु उसके बारे में यह निष्कर्ष निकल सकता है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) और (छ) के उपबन्धों का अतिक्रमण करता है तो अनुच्छेद 19(1)(च) (छ) के आधार पर नियंत्रण आदेश के विरुद्ध किया गया आक्षेप वस्तुतः उसे सशक्त करने वाले उपबन्धों पर ही आक्षेप होगा जिसका संरक्षण किया जा चुका है । अतः नियंत्रण आदेश को व्युत्पन्न संरक्षण प्राप्त होता है । केन्द्रीय सरकार को केवल यह दर्शित करना होता है कि वह सशक्त करने वाले उपबन्ध के अन्तर्गत आता है । ऐसी दशा में संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मूल अधिकारों के आधार पर इसे कोई अन्य कसौटी लागू नहीं की जा सकती है।

20. अतः आक्षेपकृत कीमत नियंत्रण या कीमत नियत करने वाले आदेश की विधिमान्यता की सभी कसौटियां अधिनियम की धारा 3 में देखी जानी हैं । धारा 3 आवश्यक वस्तु के प्रदाय के बनाये रखने या बढ़ाने के लिये या उसका साम्यिक वितरण और उचित कीमत पर उसकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने के लिये नियंत्रण आदेश की आवश्यकता या समीचीनता को ही विधिमान्यता की कसौटी बनाती है । यह स्पष्ट है कि किसी अध्युपाय की, उन सब तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में जिनका कीमत नियत करने वाले विषयों से संबंध हो, समीचीनता या आवश्यकता अनिवार्यतः व्यक्तिपरक विषय होता है । यह सत्य है कि विभिन्न समयों पर प्रति किलो सरसों के तेल की विशिष्ट विक्रय कीमत अवधारित करने के लिये वस्तुपरक कसौटी भी लागू करनी पड़ सकती है, किन्तु यहां पर कीमत इस ढंग से नियत करने की कोई बाध्यता नहीं है जिससे उत्पादक या विनिर्माता के लिये उचित लाभ सुनिश्चित किये जा सकें । यह भी स्मरण रखना होगा कि इसका उद्देश्य साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उपलभ्यता सुनिश्चित करना है जिससे कि किसी समय विशेष पर कोई वस्तुपरक कसौटियां लागू करते समय उपभोक्ता का न कि

1978(2) eILR(PAT) SC 1

उत्पादक का हित अवधारक बात होगी । अतः सरसों के तेल की, जिसका उपभोग साधारण तौर पर सीमित साधनों वाले जनसाधारण द्वारा किया जाता है, कीमत नियत करते समय अत्यधिक महत्वपूर्ण वस्तुपरक तथ्य औसत क्रेता या उपभोक्ता की संदाय क्षमता होता है।

21. सम्पूर्ण देश में सरसों के तेल की कीमतों की वृद्धि के आंकड़े नियंत्रण आदेश के पूर्व की कालावधि के दौरान बहुत अधिक तेजी उपदर्शित करते थे । वह औसत उपभोक्ता के लिये उचित कीमतों पर उपलभ्य नहीं रह गया था । यह समझना कठिन है कि कोई औसत उपभोक्ता 10 रुपये प्रति किलो से अधिक कीमत पर सरसों का तेल किस प्रकार खरीद सकता था जब तक कि उसको कृत्रिम रूप से बहुत अधिक धन देकर उसकी क्रय क्षमता बढ़ा न दी जाये । इससे अनिवार्य रूप से श्रमिक वर्ग की मजदूरियों में और मध्यम वर्ग के लोगों के वेतनों में एक सामान्य वृद्धि विवक्षित होगी जो कि मुद्रा स्फीतिकारी अर्थव्यवस्था के लाभों के हिस्सेदार नहीं होते हैं । दूसरे शब्दों में सरसों के तेल को 10 रुपये प्रति किलो से अधिक कीमत नियत करने पर देश को आर्थिक संकट और विनाश की ओर मुद्रा स्फीति के गढ़े में ढकेल दिया गया होता ।

22. आधुनिक 'सम्पूर्ण' संघर्ष की जरूरतों और अभ्यावश्यकताओं के कारण हो सकता है कि विश्व के राष्ट्र पर कीमत नियंत्रण और योजना की नीति थोपी जानी पड़ी हो। किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, इसके पश्चात् की शान्ति और पुनर्निर्माण की समस्याएं भी जो कि इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हो जाती हैं (या कुछ लोगों के अनुसार जिनकी एकदम भरमार हो जाती है) कम महत्वपूर्ण नहीं है । इसके अलावा यह सामान्य ज्ञान की बात है कि बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति के कारण हमारे देश में बढ़ती हुई कीमतें सम्पूर्ण देश के लिए ऐसी समस्याएं उत्पन्न करती हैं जो किसी युद्ध से कम गंभीर नहीं हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि प्रत्येक सरकार का भाग्य अन्ततः इन समस्याओं के सन्तोषजनक हल और विशेष रूप से आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में होने वाली वृद्धि को रोकने की उसकी क्षमता पर निर्भर करता है ।

23. हमने यह दर्शित करने के लिए पेश किए गए लम्बे चौड़े तथ्यों को सुना है कि देश के विभिन्न भागों में तेल के उत्पादकों और

विक्रेताओं को कठिनाई होगी जिससे कि वे सरसों के तेल का उत्पादन या उसका व्यापार बन्द कर देंगे। यह तर्क दिया गया था कि पूर्णतया स्वाभाविक है कि इसकी उन उपभोक्ताओं पर प्रतिक्रिया होगी जिनके लिए अन्ततः सरसों का तेल इतना दुर्लभ बन जाएगा जितना कि कभी भी नहीं था। हमारे विचार में आर्थिक नीति के ऐसे मामलों के बारे में कोई निर्णय देना इस न्यायालय या किसी भी न्यायालय का कार्य नहीं है जिसका विनिश्चय अनिवार्य रूप से तत्कालीन सरकार पर ही छोड़ देना होगा। कीमत नियत करने के अध्युपाय के रूप में इसमें से अधिकांश जैसा कि कीमत नियत करने के अध्युपाय की दशा में अनिवार्यतः होता है, उन अन्तिम परिणामों के पूर्वकलन के मामले होते हैं जिनके बारे में विशेषज्ञ भी गंभीर गलतियां कर सकते हैं और निःसन्देह भिन्न मत रख सकते हैं। निश्चित रूप से न्यायालयों से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वे विशेषज्ञों की सहायता के बिना ही उनका विनिश्चय करें।

24. किसी भी न्यायालय के लिए इस बात का अवधारण करने के लिए कि क्या कोई विशिष्ट समुत्थान या पक्षकार जो इस न्यायालय के समक्ष आए हैं उचित रूप से सरसों का तेल उस कीमत पर उत्पादित नहीं कर सकते थे जिससे कि उनके लिए 10 रुपए प्रति किलो से कम पर तेल बेचना युक्तियुक्त हो, पूरे देश से साक्ष्य एकत्रित करना संभव नहीं है। हमारे समक्ष विद्वान् काउन्सेल ने यह असम्भव कार्य करने का प्रयास किया है। हमारे विचार में इस प्रकार के मामले में इसका प्रयास भी नहीं किया जाना था क्योंकि जिस कीमत पर सरसों का तेल इससे कुछ पहले ही बाजार में आम तौर पर बेचा जाता था और जो कीमत 30 सितम्बर, 1977 को नियंत्रण आदेश पारित किए जाने के समय विद्यमान थी, वे सर्वविदित हैं। सरकार को केवल इतना ही करना था कि वह इस बात के आधार पर नीति विषयक विनिश्चय करती कि सरसों के तेल के औसत क्रेता की संदाय क्षमता उचित रूप से क्या हो सकती है और आशयित कीमत नियत किए जाने के संभाव्य प्रभाव क्या हो सकते हैं। यह सत्य है कि भारत संघ ने इन दृष्टियों से पर्याप्त सामग्री हमारे समक्ष नहीं रखी थी। ऐसा होने पर भी, यह मामला इतना स्पष्ट है कि हमारे विचार में किन्हीं विस्तृत आंकड़ों की जरूरत नहीं है। हम जानबूझकर उस अधिकांश सामग्री

पर विचार नहीं कर रहे हैं जोकि सरसों का तेल उत्पादित करने की वर्तमान कीमत तथा उसके अवधारण के आधार पर उचित कीमत के नियत करने की दृष्टि से हमारे समक्ष रखी गई है। अधिनियम की धारा 3 के उपबंधों की दृष्टि से वे अधिक अनिवार्य प्रश्न जिनका उत्तर दिया जाना अपेक्षित था, ये थे—क्या ग्राम उपभोक्ताओं का अधिकांश भाग 10 रुपये प्रति किलो ग्राम से अधिक दे सकता है? भले ही सरसों के तेल की कीमत उत्पादकों की लागत से कम पर नियत की जाए तो भी क्या भयानक मुद्रा स्फीति को रोकने के लिए ऐसा अध्युपाय करना और कीमतों को कम करना आवश्यक नहीं है? अन्तिम प्रश्न का उत्तर केवल कुछ प्रतीक्षा करके तथा अन्ततः तिलहन की कीमतों पर तथा सरसों के तेल के उत्पादन की लागत पर किसी विशिष्ट कीमत नियतन के अन्तिम प्रभावों को देखकर ही दिया जा सकता है। यदि उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर सरसों के तेल की उपलभ्यता की दृष्टि से कीमत नियतन का उद्देश्य, जिसका कि इस प्रश्न द्वारा सुझाव दिया गया है ध्यान में लिया जाना अत्यंत आवश्यक है, जैसा कि हम समझते हैं तो क्रेताओं के लिए उत्पादन की वास्तविक लागत निश्चित रूप से एक मात्र या विनिश्चायक बात नहीं हो सकती है। यह केवल विभिन्न सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों में से एक हो सकती है।

25. पिटीशनरों की ओर से हमारे समक्ष रखे गये विभिन्न आंकड़ों का वास्तविक परिणाम यह है कि नियत की गई कीमत लगभग 3 रुपये प्रति किलोग्राम और अधिक अर्थात् लगभग 13 रुपये प्रति किलो ग्राम होनी चाहिए। भले ही हम इसे सामान्य समयों के लिए सही प्राक्कलन मान लें जब कि उत्पादकों का उचित लाभ ही महत्वपूर्ण बात हो, तथापि हमारे विचार में भयानक मुद्रा स्फीति के दौर को समाप्त करने के प्रयास के भाग के रूप में 10 रुपये प्रति किलोग्राम पर नियत की गई कीमत कदापि अनुचित कदम नहीं है।

26. अर्थ व्यवस्था के छात्रों तथा संप्रेक्षकों ने हमें यह सूचित किया है कि किसी समाजवादी देश में मुद्रा स्फीति कोई समस्या नहीं होती है क्योंकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से इस प्रकार नियंत्रित होती है कि कीमतों में वृद्धि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

हमारी अर्थ व्यवस्था में, जिसे कि 'मिश्रित अर्थ व्यवस्था' कहा जाता है सुनियोजन तथा कीमत नियतन उसी सामाजिक नियंत्रण का भाग है जो कतिपय अवस्थाओं में अपरिहार्य बन जाते हैं। वस्तुतः प्रायः किसी भी ऐसी व्यवस्था के अधीन जो जन सामान्य का कल्याण सुनिश्चित करने के लिए समाजवादी अध्युपायों को अपना लेती है, ऐसा करना प्रायः पूर्णतया अपरिहार्य प्रतीत होता है। संघ की ओर से यह तर्क दिया गया है कि इस नियतन के परिणामस्वरूप अनिवार्य रूप से स्वतंत्र क्षेत्र में वांछित प्रभाव उत्पन्न हो जायेंगे जिनमें कि तिलहन की कीमत को अभी नियंत्रित नहीं किया गया है। अधिरोपित नियंत्रण उत्पादकों के लिए तिलहन के लिए उस अधिक कीमत की प्रस्थापना करना असंभव बना देगा जिसकी उत्पादक मांग करें। अतः यह तर्क दिया गया था कि यदि पिटीशनर कुछ समय तक के लिए प्रतीक्षा कर सके तो कुछ ही समय के अन्दर लागत का कम हो जाना अवश्यम्भावी है। घाटे की विक्रय कीमत पर नियतन करने से भी उत्पादकों को अस्थायी हानि ही विवक्षित थी जो कि अन्ततः उनके अपने हितों और साथ ही जन कल्याण के हितों में साधक हो सकती है। यह सुझाव दिया गया था कि हमारे जैसी व्यवस्था में सरसों के तेल के उत्पादकों को ऐसा त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। यदि वे यह हानि बर्दाश्त करने में समर्थ नहीं हैं तो वे अपने कारखाने बन्द कर सकते हैं। वे अपने ही निबन्धनों के अनुसार कोई कारबार या विनिर्माण करने के अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) द्वारा दिया गया अधिकार भी ऐसा नहीं है। तथापि, जैसा कि हमने पहले ही उपदर्शित किया है, यह प्रतीत होता है कि समाजवादी कल्याणकारी अर्थव्यवस्था के उद्देश्यों के उन्नयन के लिए ऐसे अध्युपायों में जो इतने आवश्यक हों जितना कि आवश्यक वस्तुओं की कीमतों का नियतन होता है, बाधा डालने के लिए अनुच्छेद 14, 19 और 31 के लागू किए जाने को रोकने के लिए ही अधिनियम को नवम् अनुसूची में रखा गया था। हमारे विचार में यह बात उन सब तर्कों का पर्याप्त उत्तर दे देगी जोकि हमारे समक्ष उस कीमत से, जिसे लागत खर्च बताया गया है, कम पर सरसों के तेल की कीमत नियत करने कि असांविधानिकता के बारे में काफी विस्तार से पेश किए गए हैं।

27. प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि संविधान के भाग-3 द्वारा संरक्षित मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किए गए रिट पिटीशन को खारिज करने वाले हमारे आदेश के पारित किए जाने तथा इन कारणों के दिए जाने के बीच की अवधि के दौरान भी 30 सितम्बर, 1977 वाले आदेश का प्रभाव इतना अधिक फायदाप्रद था कि सरसों के तेल की कीमत गिरकर लगभग 7 रुपये प्रति किलोग्राम हो गई है। स्पष्ट रूप से यह उत्पादकों और साथ ही मध्यस्थों के युक्तियुक्त लाभों के लिए पर्याप्त है। हमें यह सूचित किया गया है कि केन्द्रीय सरकार ने स्वयं ही आक्षेपकृत नियंत्रण आदेश वापिस ले लिया है। हम इन तथ्यों का न्यायिक अवलोकन कर सकते हैं जो कि अधिकतम सार्वजनिक कल्याण के लिए किए गए आर्थिक नियंत्रण और योजना के अध्युपायों में किसी भी न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप के अत्यधिक अनौचित्य को प्रकट करते हैं। विद्यमान सरकार द्वारा किए गए इन फायदाप्रद अध्युपायों में अड़चन डालना या उन्हें विफल करना न्यायालयों का कार्य नहीं होता है। न्यायालय ऐसी कार्रवाइयों के औचित्य के बारे में कोई निर्णय तब तक नहीं दे सकते हैं जब तक कि की गई कार्रवाई इतनी अधिक अयुक्तियुक्त न हो कि उसे मंजूरी देने के लिए किसी भी विधि से समर्थन प्राप्त न हो।

28. यदि 30 सितम्बर, 1977 वाला आक्षेपकृत आदेश इस उपबन्ध के अंतर्गत आ जाता है, जैसा कि हम समझते हैं कि वह इसके अंतर्गत आ जाता है, तो किसी मूल अधिकार के अतिक्रमण का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं हो सकता है। यदि आक्षेपकृत आदेश अधिनियम की धारा 3 के बाहर होता तो अनुच्छेद 19(6) द्वारा अनुध्यात औचित्य विषयक कोई कसौटी लागू करने का प्रश्न उत्पन्न होने की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि तब वह अनुच्छेद 19(1) (छ) द्वारा प्रदत्त अधिकार पर पूर्ण रूप से अवैध निर्बन्धन होता जो कि उसका समर्थन करने के लिए किसी भी विधि के प्राधिकार के अभाव के कारण असफल हो जाएगा।

29. हमने कीमतों के उचित नियतन के सिद्धांतों के बारे में भी काफी तर्क सुने हैं और यह निवेदन किया गया था कि कीमतें नियत करते समय उत्पादन लागत और साथ ही विनिर्माता तथा मध्यस्थ के लिए उचित लाभ की रकम को भी ध्यान में रखा जाना

चाहिए। जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, ऐसे सिद्धांत केवल उन्हीं मामलों में लागू होते हैं जिनमें कीमत नियत करने वाले प्राधिकारी पर उन कतिपय बातों को ध्यान में रखने की बाध्यता हो जिनका उत्पादन लागत से सम्बन्ध होता है और जो उत्पादकों के लिए लाभ का उचित हिस्सा सुनिश्चित करने के लिए परिकल्पित होती हैं। जैसा कि पहले इंगित किया गया है, अधिनियम की ऊपर दी गई धारा 3 का प्रयोजन पूर्णतया भिन्न है। हो सकता है कि उत्पादन की लागत और विनिर्माताओं के लाभ की उचित रकम का अधिनियम की धारा 3(1) में उपवर्णित विषयों से कोई परोक्ष सम्बन्ध हो। किन्तु जिन मामलों में धारा 3(1) में उपवर्णित प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए अपनाई गई किसी नीति या अपनाए गए अध्युपायों के प्रभावों का प्रयोगों के पश्चात् अनुमान ही लगाया जा सकता है वहां पर्याप्त निश्चितता से वास्तविक परिणाम केवल उस नीति को कार्यान्वित करने और परिणाम दर्शित करने के लिए कुछ समय देने के पश्चात् ही उपदर्शित किए जा सकते हैं। किसी मामले में इन बातों की उपस्थिति कीमत नियतन को अविधिमान्य नहीं बना सकती है जिसके प्रत्यक्ष उद्देश्य अधिनियम की धारा 3(1) में उपवर्णित है ।

30. विद्वान महासालिसिटर श्री कक्कड़ ने हमारा ध्यान मात्र विनियमक आदेश और अधिनियम की धारा 3(2) (ग) के अधीन कीमत नियत करने या कीमत नियंत्रण के आदेशों के बीच के प्रभेद की ओर ठीक ही आकृष्ट कराया है। अधिनियम की धारा 3(1) में उपवर्णित सामान्य प्रयोजनों को पूरा करने के लिए बढ़ती हुई कीमतों के दूषित मुद्रास्फीतिकारी उतारचढ़ाव को उलटने के लक्ष्य से किया गया कीमत नियतन, यदि उत्पादकों को उचित लाभ देने के लक्ष्य से, जो कि अधिनियम की धारा 3(1) का उद्देश्य नहीं है, कीमत नियतन को लागू होने वाले मानकों की दृष्टि से देखा जाए तो, मनमाना या अयुक्तियुक्त प्रतीत हो सकता है। पिटीशनरों का सम्पूर्ण साक्ष्य ही भ्रामक है क्योंकि वह इस धारणा पर अग्रसर होता है कि जो बात एक सुसंगत विचार से अधिक कुछ नहीं हो सकती है वही अधिनियम की धारा 3(1) का सम्पूर्ण और एक मात्र उद्देश्य है। अन्य विषयों की बाबत लगभग कोई साक्ष्य नहीं है जिससे कि हमें अनुमान ही लगाने हैं।

31. हमारे समक्ष यह दर्शित करने के लिए कोई मामला उद्धृत नहीं किया गया है. कि किसी ऐसे प्रयोजन के लिए आशयित आदेश जिसका निष्पादन जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, तत्समय लागत खर्च से भी कम पर कीमत नियत करने की अपेक्षा करता हो अधिनियम की धारा 3(1) की व्याप्ति से बाहर होगा। संघ की ओर से ठीक ही यह तर्क दिया गया था कि नियंत्रण आदेश एक अस्थायी और प्रायोगिक अध्युपाय है जो कि किसी समय विशेष पर अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत आने वाले विशिष्ट प्रयोजन को विशेष अवस्थाओं में प्राप्त करने के लिए है। यह निवेदन किया गया था कि वह प्रयोजन पूरा हो जाने के पश्चात् वह आदेश भारत सरकार द्वारा वापिस लिया जा सकता है और वापिस ले लिया जाएगा। जैसा कि पहले ही ऊपर कथित किया गया है, वह आदेश वापिस ले लिया गया है क्योंकि प्रयोजन पूरा हो चुका है। यदि वह प्रयोजन पूरा न भी हुआ होता तो भी उस दशा में आदेश वापिस लिया जा सकता था जब कि सरकार को यह स्पष्ट हो जाता कि उस नियंत्रण से वांछित उद्देश्य प्राप्त नहीं होगा। आर्थिक नीति के मामलों में प्रयोग करने के क्षेत्र में न्यायालयों का प्रवेश करना अत्यधिक नुकसान दायक होगा और ऐसे मामले तत्कालीन सरकार के लिए ही छोड़ दिए जाने चाहिएं।

32. अधिनियम की धारा 3(3) के उपबंधों से यह देखा जाएगा कि कतिपय निश्चित सिद्धांतों के आधार पर कीमतों का नियतन केवल तभी आवश्यक हो जाता है जबकि अधिनियम की धारा 2(च) के अधीन कोई ऐसा आदेश हो जो सम्पूर्ण स्टाक या उसका कोई विनिर्दिष्ट भाग केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार अथवा उनके द्वारा निर्दिष्ट प्राधिकारियों या व्यक्तियों को बेचे जाने के लिए बाध्य करता हो। इसके अलावा उपधारा (3क)(iii) विशेष मामलों में कीमत नियत करने की पद्धति उपबन्धित करती है। धारा (3ख) और (3ग) के अधीन के आदेशों के बारे में भी यही स्थिति है। यह देखा जाएगा कि प्रदायों की तथा साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उनकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रदायों के नियंत्रण की सम्पूर्ण पद्धति निश्चित सिद्धांत के आधार पर विशेष मामलों में कीमत नियतन की पद्धति से बहुत अधिक व्यापक है।

33. कीमत नियंत्रण के बारे में हमारे समक्ष उदधृत मामले उस क्षेत्र से संबंधित हैं जिसमें कीमतें नियत करने की कसौटी या तो कानूनी उपबन्ध द्वारा या तदधीन बनाए गए आदेशों द्वारा उपदर्शित कर दी गई थी। **पानीपत कोऑपरेटिव शुगर मिल्स** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था:

> "इन अपीलों में दो मुख्य प्रश्न ये उत्पन्न होते हैं—(1) धारा 3(3ग) का सही निर्वचन क्या है, और (2) क्या 124 रुपए 63 पैसे की कीमत धारा 3(3ग) के उपबंधों के अनुसार थी।"

इस प्रकार उस मामले में कीमत नियत करने विषयक कानूनी सिद्धांत विचाराधीन थे। इसके पश्चात् **मीनाक्षी मिल्स** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में कॉटन टैक्सटाइल्स कन्ट्रोल आर्डर्स के अधीन कतिपय सारणियों के माध्यम से विक्रय विहित करते हुए निर्देश दिए गए थे। इस न्यायालय ने सुसंगत नियमों के अनुसार सूती वस्त्रों की विक्रय कीमतें नियत करने के सिद्धांत स्पष्ट किए थे।

34. **मीनाक्षी मिल्स वाले मामले**[2] में मुख्य न्यायाधिपति रे ने **प्रीमियर ऑटोमोबाईल्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का निम्नलिखित शब्दों में अनुमोदन किया था

> "प्रीमियर आटोमोबाइल्स वाले मामले के विनिश्चय में इस बात पर विचार नहीं किया गया है कि उचित कीमतों का सिद्धांत उन परिस्थितियों के अनुसार जिनमें और उन प्रयोजनों के अनुसार जिनके लिए कीमत नियंत्रण अधिरोपित किया जाना ईप्सित है, बदलने वाला है। इस विनिश्चय में विशेष करार के कारण यह विचार नहीं किया गया है कि कीमत रेखा को बनाए रखने के लिए उचित कीमत का नियतन कीमत में कालिक वृद्धि होने देने से निष्प्रभावी हो सकता है।"

---

[1] (1973) 2 एस० सी० आर० 860=[1973] 1 उम० नि० प० नि० सा० 49.

[2] (1974) 2 एस० सी० आर० 398=[1974] 1 उम० नि० प० 651.

[3] (1972) 2 एस० सी० आर० 526=[1972] 1 उम० नि० प० नि० सा० 91.

इसमें यह मत भी व्यक्त किया गया था:—

"प्रीमियर ग्राटोमोबाल्इस वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कहा है कि 'धारा 18-छ के अधीन नियत उचित कीमत के सिद्धांत में उसे उपभोक्ता के लिए उचित बनाने के लिए सभी बातों का ध्यान रखा गया है और विनिर्माता के लिए लाभ की युक्तियुक्त मात्रा भी रखी गई है जिसके बिना कोई भी विनिर्माण का कार्य नहीं करेगा।' यह विचार पक्षकारों के इस करार के आधार पर व्यक्त किए गए हैं कि तकनीकी या विधि सम्बन्धी बातों को ध्यान में न लाते हुए न्यायालय को अपना निर्णय सही और युक्तिसंगत सिद्धांत की परीक्षा पर आधारित रखना चाहिए और उनके द्वारा नियत जांच आयोग की रिपोर्ट से हटने के लिए केवल पक्षकारों की सहमति से उस समय निदेश देना चाहिए जब कि यह दर्शित किया जाए कि सुस्थापित सिद्धांतों का अनुसरण नहीं किया गया है या आयोग के निष्कर्षों को प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण या गलत बताया गया है।"

दूसरे शब्दों में वह निर्णय अन्य मामलों में न्यायालय द्वारा की जाने वाली ऐसी ही किसी बात के लिए कोई नज़ीर पेश नहीं करता है।

35. **सरस्वती इण्डस्ट्रियल सिण्डीकेट लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[1] के मामले में इस न्यायालय ने शुगर कन्ट्रोल आर्डर, 1966 के संदर्भ में ऊपर उल्लिखित मामलों पर विचार विमर्श किया था। उक्त आदेश के खण्ड (7) में कुछ वे बातें अधिकथित की गई थीं जिन पर उचित कीमत अवधारित करते समय विचार किया जाना था। उसमें यह भी अभिनिर्धारित किया गया था—

"कीमत का नियत किया जाना तो एक विधायी अध्युपाय है भले ही वह किसी रिपोर्ट में या अन्य सामग्री में पाई गई किसी वस्तुपरक कसौटी पर आधारित हो। अतः इससे कोई ऐसी शिकायत नहीं हो सकती कि कीमत नियत करते समय नैसर्गिक न्याय के नियम का अनुसरण नहीं किया गया है। तथापि, अपनाई गई कसौटी युक्तियुक्त होनी चाहिए।"

---

1. (1975) 1 एस० सी० आर० 956=[1975] 1 उम० नि० प० 578.

शुगर कन्ट्रोल आर्डर, 1966 के खण्ड (7) में अधिकथित मार्ग दर्शक बातों के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे केवल नियंत्रण आदेश में उपदर्शित आधारों पर कीमत नियत करने में सरकार की सहायता करने के लिए संकेत मात्र हैं।

36. हमारे विचार में जब तक किसी विशिष्ट कानून या आदेश के निबन्धनों द्वारा कीमत नियतन को विनिर्दिष्ट प्रयोजनों या मामलों के लिए न्यायिककल्प कृत्य नहीं बना दिया जाता तब तक उस प्रकार के नियंत्रण आदेशों के रूप में जो कि अब हमारे समक्ष हैं, वह वस्तुतः विधायी स्वरूप का ही होता है क्योंकि वह विधान की कसौटी को पूरा कर देता है। किसी विधायी अध्युपाय का सरोकार किसी व्यष्टिक मामले के तथ्यों से नहीं होता है। इसका आशय एक विशिष्ट प्रकार या वर्ग के सब व्यक्तियों या वस्तुओं या संव्यवहारों को लागू होने वाला सामान्य नियम अधिकथित करना होता है। हमारे समक्ष के मामले में नियंत्रण आदेश भारत में कहीं पर भी किसी भी व्यवहारी द्वारा सरसों के तेल के विक्रय को लागू होता है। विधिमान्यता की पुरोभाव्य शर्तों के रूप में अनुपालित की जाने वाली किसी विशिष्ट प्रक्रिया के अनुपालन पर या किन्हीं विनिर्दिष्ट मामलों में लिए जाने वाले साक्ष्य के विशिष्ट प्रकारों पर इसकी विधिमान्यता निर्भर नहीं करती है। विधिमान्यता की कसौटी पारित आदेश और उन प्रयोजनों के बीच जिनके लिए वह पारित किया जा सकता है, संबंध दर्शित करके या दूसरे शब्दों में सम्भाव्य या अधिसम्भाव्य परिणाम के आधार पर परखी गई युक्तियुक्तता द्वारा पूरी हो जाती है।

37. यह सत्य है कि कार्यपालक या विधायी कार्यवाही भी उन्हीं परिसीमाओं तक ही सीमित होनी चाहिए जिनके भीतर वह प्रवृत हो सकती है। उसे प्रदत्त शक्तियों के क्षेत्र के भीतर उचित रूप से आना चाहिए। प्रदत्त शक्तियों का क्षेत्र सशक्त करने वाले उपबंध के निबन्धनों पर निर्भर करता है। जैसा कि हमने पहले ही उल्लिखित किया है, इस मामले में सशक्त करने वाले उपबंध की शब्दावली काफी व्यापक है। हमारे समक्ष धारा 3 की विधिमान्यता को चुनौती नहीं दी गई है। जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, इस अधिनियम के संविधान की नवम अनुसूची में सम्मिलित कर लिये जाने के पश्चात् उसे अनुच्छेद 31ख के आधार पर चुनौती नही दी जा सकती थी। अनिवार्य रूप से परिणाम यह है कि

1978(2) eILR(PAT) SC 1

जिस मामले में केन्द्रीय सरकार समीचीनता और आवश्यकता की इस हद तक निर्णायक हो कि ऐसी आवश्यकता समीचीनता विषयक उसके दृष्टिकोण या उसकी राय के मार्ग में गारण्टीकृत मूल अधिकारों का संरक्षण भी न आता हो, वहां उन आधारों पर चुनौती सफल नहीं हो सकती थी जिन पर हमारे समक्ष आक्षेप करने का प्रयास किया गया था ।

38. हम यहां पर यह भी उल्लेख कर दें कि धारा 3(1) के मुख्य प्रयोजन के बारे में अपनाया गया हमारा मत **मीनाक्षी मिल्स वाले मामले**[1] में उसके प्रयोजन की निम्नलिखित व्याख्या के अनुसार है––

> "विधान के प्रमुख उद्देश्य और उसके प्रयोजन के प्रति निर्देश से उपभोक्ता के लिए उचित कीमत का प्रश्न जिसमें साम्यिक वितरण और उचित कीमत पर उसकी उपलभ्यता का दावा किया गया हो उस समय पूर्णतया समाप्त हो जाता है जब लाभ और उत्पादन के प्रत्यागम को महत्व दिया जाता है। वस्तु के प्रदाय बनाए रखने या उसमें वृद्धि अथवा साम्यिक वितरण और उचित कीमत पर उसकी उपलभ्यता अधिनियम के मूल प्रयोजन हैं ।"

39. हमारे विचार में हमें कीमत नियत करने के बारे में अमरीकी मामलों, पर जैसे कि **लियो नेब्बिया बनाम पीपल ऑफ दि स्टेट ऑफ न्यूयार्क**[2] वाला मामला, जिसमें अपकारी कार्रवाई के विरुद्ध साम्यिक प्रक्रिया विषयक गारंटी अन्तर्वलित थी विचार करने की जरूरत नहीं है । हमारे देश में सम्पत्तिया उद्योग या व्यापार या कारबार करने के अधिकारों की बाबत ऐसी गारण्टियां केवल संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 के आधार पर ही उत्पन्न हो सकती थी जो कि यहां पर संविधान की नवम् अनुसूची द्वारा अधिनियम की धारा 3 को प्रदत्त संरक्षण के कारण अपवर्जित हो जाते हैं। तथापि मैं यह उल्लेख कर दूं कि **परमियन बेसिन एरिया रेट केसिज वाले मामले**[3] में, जहां कि यूनाइटिड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट के विद्वान न्यायाधीशों के बहुमत ने फेडरल पावर कमीशन के विशेषज्ञ निकाय द्वारा, जिससे कि न्यायिककल्प रूप से कार्रवाई करने की अपेक्षा की गई थी, कीमत नियत किए जाने की बाबत अन्य बातों के साथ

---

[1] (1974) 2 एस० सी० आर० 398 =[1974] 1 उम० नि० प० 651.

[2] 291 यू० एस० (78) लायर्स एडिशन 502.

[3] 20 लायर्स एडिशन 312.

यह अधिकथित किया था कि "कमीशन के निर्णय को उलटने के लिए" पिटीशनरों को "विश्वासप्रद रूप से यह दर्शित करने का कठिन भार अपने ऊपर लेना होगा कि वह इसलिए अविधिमान्य है कि उसके परिणाम अन्यायपूर्ण और अयुक्तियुक्त हैं।" उस मामले में कमीशन पर साक्ष्य लेने और प्रभावित पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात् कतिपय सिद्धांतों के अनुसार दरें नियत करने का कर्त्तव्य डाला गया था। ऐसा होने पर भी पिटीशनरों के कर्त्तव्य के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह परिणामों का अनौचित्य और अन्याय पूर्णता दर्शित करने तक विस्तारित होता है। और भी प्रबल रूप से, यदि कीमत नियंत्रण के किसी अध्युपाय पर, जो विधायी स्वरूप का या विशुद्धता प्रशासनिक कार्रवाई के स्वरूप का हो, आक्षेप किया गया हो तो उपभोक्ताओं के हितों के प्रति प्रकट अन्याय और अनुचित क्षति दर्शित की जानी होगी। जब तक कि की जाने वाली कार्रवाई इतने प्रकट रूप से अन्यायपूर्ण या अयुक्तियुक्त नहीं है जिससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता हो कि वह अधिनियम की धारा 3(1) के अन्तर्गत नहीं आ सकती है तब तक उसे अपास्त नहीं किया जा सकता या अविधिमान्य घोषित नहीं किया जा सकता है। कसौटी अधिनियम की धारा 3(1) द्वारा ईप्सित उद्देश्यों पर उस कार्रवाई के परिणामों विषयक ही होगी। यदि इस कसौटी के आधार पर परखा जाए तो हमारे विचार में 30 सितम्बर, 1977 वाला आदेश अधिनियम की धारा 3 की व्याप्ति के अन्तर्गत आता है और इसने अपने प्रयोजनों को पूरा कर दिया है।

40. ऊपर दिये गये कारणों से 23 नवम्बर, 1977 को हमारे द्वारा पहले ही पारित आदेश जिसके द्वारा रिट पिटीशन खारिज कर दिए गए थे हमारी राय में पूर्णतया न्यायोचित है।

न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, पी० एन० भगवती, एस० मुर्तजा फजल अली, पी० एन० सिंघल और जसवन्त सिंह के मतानुसार।

चूंकि हम सम्प्रति विद्वान मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दिए गए निर्णयाधार के एक भाग से, अति आदर सहित सहमत नहीं होना चाहते हैं, इसलिए हम अपने कारण बाद में देंगे।

(न्या० वाई० चन्द्रचूड ने निम्नलिखित निर्णय अपनी ओर से तथा न्या० पी० एन० भगवती, एस० मुर्तजा फजल अली, पी० एन० सिंघल और जसवन्त सिंह की ओर से ता० 5-5-1978 को दिया।—सम्पादक)

1978(2) eILR(PAT) SC 1

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, एस० मुर्तज़ा फज़ल अली, पी० एन० सिंघल और जसवन्त सिंह की ओर से ता० 5-5-1978 को मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ के मतानुसार दिया गया निर्णय।

न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

41. 30 सितम्बर, 1977 को, भारत सरकर के सिविल प्रदाय और सहकारिता मन्त्रालय ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955, 1955 का 10, की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, सरसों का तेल (कीमत नियन्त्रण) आदेश, 1977 जारी किया कीमत नियन्त्रण आदेश के खण्ड 3 में उपबन्धित है कि कोई भी व्यवहारी पीपे की लागत को छोड़कर किन्तु करों को सम्मिलित करते हुए, वह स्वयं या उसकी ओर से कोई व्यक्ति 10 रुपये प्रति किलोग्राम से अधिक खुदरे की कीमत पर सरसों का कोई भी तेल नहीं बेचेगा या बेचने की प्रस्थापना नहीं करेगा। खण्ड 2 में व्यवहारी की बाबत परिभाषा करते हुए उससे ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो कि सरसों के तेल के क्रय या विक्रय या भंडारण के कारबार में लगा हुआ हो।

42. कीमत नियन्त्रण आदेश को इस न्यायालय में अनेक व्यवहारियों ने मुख्यतः इस आधार पर चुनौती दी की वह संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1) (च) और 19(1) (छ) का अतिक्रमण करता है। अनुच्छेद 301 भी प्रेद्धृत किया गया किन्तु गम्भीरता के साथ उसके सम्बन्ध में कोई भी दलील पेश नहीं की गई।

43. इस दलील के संबंध में कि कीमत नियन्त्रण आदेश सम्पत्ति के अधिकार और व्यवसाय या कारबार चलाने के अधिकार का उल्लंघन करता है, उसे समझने और उसका विनिश्चय करने के लिए यह जानकारी होनी अपेक्षित है कि 1976 में पारित चालीसवें संशोधन द्वारा, आवश्यक वस्तु अधिनियम को संविधान की नवम अनुसूची में मद संख्या 126 के रूप में रखा गया था। कीमत नियन्त्रण आदेश की विधिमान्यता को पिटीशनर द्वारा की गई चुनौती के उत्तर में संघ सरकार की मुख्य दलील यह है कि चूंकि अधिनियम, नवम अनुसूची में रखे जाने के कारण, इस आधार पर चुनौती दिए जाने से उन्मुक्त है कि उसके उपबंध संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटी किए गए मूल अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं इसलिए कीमत नियन्त्रण आदेश को भी जो कि मात्र अधिनियम के कारण अस्तित्व में आया है वही उन्मुक्ति प्राप्त होनी चाहिए। विद्वान मुख्य

न्यायाधिपति श्री एम० एच० बेग ने इस दलील को स्वीकार किया है किन्तु हम उनके मत से सहमत होने में सादर असमर्थ हैं ।

44. संविधान का अनुच्छेद 31-क, संविधान के अनुच्छेद 13 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी ऐसी विधियों को जिनमें उसके खण्ड (क) से लेकर खण्ड (ङ) में उल्लिखित विषयों के लिए उपबंध किया गया है, अनुच्छेद 14, 19 या 31 के अधीन चुनौती दिए जाने से संरक्षा प्रदान करता है । अनुच्छेद 31-ख जो कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा पुरःस्थापित किया गया था, यह उपबंध करके कतिपय अधिनियम और विनियमों को विधिमान्य ठहराता है कि अनुच्छेद 31-क में अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना न तो नवम् अनुसूची में उल्लिखित अधिनियमों और विनियमों में से किसी की और न उनके उपबंधों में से किसी की बाबत इस कारण कि ऐसा अधिनियम, विनियम या उपबन्ध भाग 3 के किन्हीं उपबंधों द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसको छीनता है, या न्यून करता है, यह नहीं समझा जाएगा कि वह शून्य है या कभी शून्य था । इस अनुच्छेद का स्पष्ट रूप से अर्थान्वयन करने पर हमें यह स्वीकार करना असंभव प्रतीत होता है कि नवम् अनुसूची की संरक्षात्मक अतिव्यापक परिधि के भीतर न केवल उसमें विनिर्दिष्ट अधिनियम और विनियम आते हैं, बल्कि उन अधिनियमों और विनियमों के अधीन निकाले गए आदेश और अधिसूचनाएं भी आती हैं । अनुच्छेद 31-ख मूल अधिकारों में अनाधिकृत रूप से हस्तक्षेप करता है और चूंकि निस्संदिग्ध रूप से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वह दीप्तिमान सामाजिक दर्शन द्वारा प्रेरित है, अतः उसका अर्थान्वयन मात्र इन कारणों से कि मूल अधिकारों की गारंटी के महत्व को विवक्षाओं और अनुमानों द्वारा कम किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है इतनी कड़ाई के साथ किया जाना चाहिए, जितनी कि कोई कर सकता है । संविधान के इस अभिव्यक्त उपबंध का जो कि उस सीमा को विहित करता है जिस तक किसी विधि की सांविधानिकता की चुनौती अपवर्जित होती है, अर्थान्वयन इस रूप में किया जाना चाहिए कि वह अपवर्जन की सर्वाधिक सीमा तक रेखांकन करता है । उस विषयवस्तु की प्रकृति पर विचार करते हुए, जिसके संबंध में अनुच्छेद 31-ख में उपबंध किया गया है, हमारी राय में, उस क्षेत्र की जिसकी बाबत उस अनुच्छेद द्वारा यह घोषित किया गया है कि वह मूल अधिकारों के अतिक्रमण या

1978(2) eILR(PAT) SC 1

न्यूनन के आधार पर चुनौती दिए जाने से उन्मुक्त है, सीमाओं का न्यायिक निर्वचन द्वारा, विस्तार करने के लिए कोई भी औचित्य नहीं है। यह अनुच्छेद नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमों और विनियमों को संरक्षा प्रदान करता है। अतः जब कभी भी किसी विधि के उपबंध की सांविधानिकता की चुनौती को इस आधार कि वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों में से किसी का अतिक्रमण करती है, इस अभिवाक् के आधार पर राज्य द्वारा अस्वीकृत कराए जाने की कोशिश की जाती है कि वह विधि नवम् अनुसूची में रखी गई है तब संकुचित प्रश्न जो कि कोई स्वयं ही उठा सकता है, यह है कि क्या आक्षेपित विधि उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट है। यदि ऐसा है तो अनुच्छेद 31-ख के उपबन्ध लागू होंगे और आगे किसी भी जांच के बिना वह चुनौती असफल हो जाएगी। दूसरी ओर, यदि वह विधि नवम अनुसूची में विनिर्दिष्ट नहीं है, तो चुनौती की विधिमान्यता की परीक्षा यह अवधारित करने की दृष्टि से की जानी चाहिए कि क्या उसके उपबंध भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों में से किसी के किसी भी रीति से, विरुद्ध है। यह कहना उसका कोई भी उत्तर नहीं है कि यद्यपि विशिष्ट विधि, उदाहरणार्थ नियन्त्रण आदेश, नवम अनुसूची में विनिर्दिष्ट नहीं है तथापि मूल अधिनियम जिसके अधीन आदेश जारी किया गया है, उस अनुसूची में विनिर्दिष्ट है।

45. सरसों का तेल (कीमत नियन्त्रण आदेश, 1977 आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन पारित किया गया था जो कि अपनी उपधारा (1) के सुसंगत भाग द्वारा, केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिए सशक्त करती है कि वह किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन, प्रदाय और वितरण को या उस में व्यापार या वाणिज्य को विनियमित करने या प्रतिषिद्ध करने के लिए, आदेश द्वारा, उस दशा में उपबंध कर सकेगी यदि उसकी यह राय है कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उचित दर से उसके साम्यापूर्ण वितरण और उपलभ्यता को सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है। चूंकि 1955 का अधिनियम नवम अनुसूची में रखा गया है, इसलिए धारा 3 (1) को सम्मिलित करते हुए उसके उपबंधों में से किसी पर भी इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि वह संविधान के भाग 3 के उपबंधों में से किसी द्वारा प्रदत्त अधिकारों से कभी असंगत है या उसे छीनता है या न्यून करता है। किन्तु

1978(2) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेद 31-ख अधिक से अधिक जो उन्मुक्ति प्रदान कर सकता है, वह यही है। अन्य शब्दो में, प्रत्यक्षत: इसी मुद्दे से संबंधित उपबंध की बाबत मत व्यक्त करते हुए, और सुसंगत उदाहरण देते हुए, 1955 के अधिनियम की धारा 3(1) की इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) या 19 (1) (छ) में अन्तर्विष्ट गारंटी का अतिक्रमण करती है। किन्तु जैसा कि सरसों का तेल (कीमत नियन्त्रण) आदेश है, अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित किसी आदेश को उस उन्मुक्ति की संरक्षा का विस्तार करने के लिए कोई भी न्यायौचित्य नहीं है। किसी ऐसे अधिनियम या विनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट है, की गई किसी कार्यवाही को अनुच्छेद 31-ख द्वारा दी गई संरक्षा के फायदे का विस्तार करने की बात, हमें ऐसा प्रतीत होता है उन उपबंधों का जो कि अनुच्छेद 31-ख में अन्तर्विष्ट है, और जो न तो उसकी भाषा द्वारा और न ही उसमें अन्तर्निहित नीति या सिद्धांत द्वारा न्यायोचित है; ऐसा अनौचित्यपूर्ण विस्तार है। जब कोई, शिष्ट अधिनियम या विनियम नवम् अनुसूची में रखा जाता है तो संसद की बाबत माना जा सकता है कि उसने किसी विशिष्ट अधिनियम या विनियम के उपबंधों के संबंध में और उसकी वांछनीयता, औचित्य या इस आवश्यकता की बाबत अपनी बुद्धि का प्रयोग किया है कि उसे इस दृष्टि से नवम् अनुसूची में रखा जाना चाहिए जिससे कि इस आधार पर उसके उपबंधों को इस सम्भावित चुनौती से बचाया जा सके, कि वें भाग 3 के उपबंधों का उल्लंघन करते हैं। जैसी कि स्थिति है, किसी ऐसे अधिनियम या विनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में रखा गया है, सरकार द्वारा जारी किए गए आदेश की दशा में ऐसी उपधारणा नहीं की, जा सकती है। यदि न्यायिक निर्वचनों द्वारा सांविधानिक उन्मुक्तता का विस्तार ऐसे आदेशों पर किया जाता है जिसकी विधिमान्यता के संबंध में संसद् को, कम से कम सैद्धांतिक रूप से ही, अपनी बुद्धि का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं था, तो मूल अधिकारों का महत्व पर्याप्त सीमा तक कम हो जाएगा। ऐसा विस्तार इस उपधारणा के आधार पर किया जाता है कि ऐसे प्राधिकारी जिनको किसी कानून के अधीन समुचित कार्यवाही करने के लिए शक्ति प्रदत्त की गई है, कानून के ढांचे के और अनुज्ञेय सांविधानिक सीमाओं के भीतर रहते हुए इस उपधारणा को स्वीकार करते हैं जिसे विगत अनुभव न्यायोचित नहीं ठहरता और जो किसी सीमा तक मिथ्या साबित होती है। वास्तव में

व्युत्पन्न उन्मुक्ति के सिद्धांत को लागू करके विधियों को कायम रखने की बात हमारे संविधान की युक्ति के विरुद्ध है और तदनुसार ऐसे अधिनियम और विनियमों के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गए हैं, जारी किए गए आदेश और अधिसूचनाओं को इस चुनौती का सामना करना चाहिए कि वे संविधान के भाग 3 के उपबंधों का उल्लंघन करते हैं। नवम् अनुसूची में रखे जाने के कारण मूल अधिनियम को जो उन्मुक्ति प्राप्त है, उसका विस्तार अपने ही बल पर अधिनियम के अधीन बनाए गए कानून पर जैसा कि अधिनियम के प्राधिकार के अधीन निकाला गया कीमत नियन्त्रण आदेश है, नहीं किया जा सकता है। अतः पिटीशनरों को यह अधिकार है कि वे इस प्रश्न के अवधारण के लिए इस न्यायालय की रिट अधिकारिता का प्रयोग करें कि क्या कीमत नियन्त्रण आदेश के उपबंध संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1) (च) और 19(1) (छ) का अतिक्रमण करते हैं।

46. विद्वान् सालिसिटर जनरल ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि कीमत नियंत्रण आदेश को नवम् अनुसूची की संरक्षा उसी सीमा तक प्राप्त होनी चाहिए जिस सीमा तक वह आवश्यक वस्तु अधिनियम को, प्राप्त है, जिसके अधीन वह आदेश निकाला गया था, और जो कि नवम् अनुसूची में रख दिया गया है, **बसन्तलाल मगनभाई गजनवाला** बनाम **मुम्बई राज्य और अन्य**[1] तथा **लताफत अली खां और अन्य** बनाम **उतर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा किए गए दो विनिश्चयों का, न्यायोचित रूप से, अवलम्ब लिया है। **बसन्त लाल मगनभाई वाले मामले** में[1] बाम्बे टेनैन्सी एण्ड एग्रीकल्चर लैण्ड्स ऐक्ट (मुम्बई अभिधृति और कृषि भूमि अधिनियम), 1948 की धारा 6(2) की शक्तियों को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसमें अति-प्रत्यायोजन का दोष मौजूद है। राज्य सरकार ने, धारा 6(2) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, अधिसूचना के साथ अनुबद्ध अनुसूची में विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में स्थित भूमियों के अभिधारियों द्वारा संदेय अधिकतम भाटक नियत करते हुए अधिसूचना निकाली थी। उस अधिसूचना की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह संविधान के अनुच्छेद 31 का उल्लंघन करती है। बहुमत ने प्रथम दलील को अस्वीकृत कर दिया जिसने यह अभिनिर्धारित किया था कि धारा 6(2)

[1] (1961) 1 एस० सी० आर० 341.
[2] (1971) सप्ली० एस० सी० आर० 719.

में अति-प्रत्यायोजन का कोई भी दोष मौजूद नहीं है। दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि मुम्बई अभिधृति अधिनियम, नवम् अनुसूची में रखा गया था, इसलिए उस अधिसूचना को जो कि उस अधिनियम की धारा 6(2) के अधीन निकाली गई थी, इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि उससे अनुच्छेद 31 का अतिक्रमण हुआ है। न्यायाधिपति सुब्बाराव ने, जो कि अल्पमत में थे, धारा 6(2) के अधीन जारी की गई अधिसूचना की विधिमान्यता से सम्बन्धित बाद वाले मुद्दे पर विचार नहीं किया, क्योंकि उनका यह मत था कि धारा 6(2) में अति-प्रत्यायोजन का दोष मौजूद है और इसी कारण से वह असांविधानिक है। इस विनिश्चय से, असन्दिग्ध रूप से, संघ सरकार की इस दलील को समर्थन प्राप्त होता है कि यदि कोई अधिनियम या विनियम नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट है, तो उसके अधीन निकाला गया कोई भी आदेश या निकाली गई कोई भी अधिसूचना उस अनुसूची की संरक्षा प्राप्त करने का समान रूप से हकदार होगी। किन्तु हमारी राय, सादर, यह है कि **बसन्तलाल वाले मामले**[1] में किए गए विनिश्चय में वास्तविक विधिक स्थिति प्रतिबिम्बित नहीं होती है जो कि, हमारे मतानुसार, यह है कि नवम् अनुसूची में रखे गए अधिनियम को जो उन्मुक्ति प्राप्त है, उसका विस्तार उसके अधीन निकाले गए आदेश या निकाली गई अधिसूचना पर नहीं किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय के विनिश्चय पर इस विचार का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है कि अधिसूचना की विधिमान्यता के विरुद्ध पेश की गई एकमात्र दलील यह थी कि सारतः उसने धारा 6(1) के उपबन्ध का संशोधन किया था और इसी कारण से वह एक ऐसा नवीन विधान था जिसको अनुच्छेद 36-ख लागू नहीं हो सकता है; न्यायालय ने उस दलील को अस्वीकृत कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि यदि धारा 6(2) विधिमान्य है, तो प्रान्तीय सरकार को विधिमान्य रूप से प्रदत्त शक्ति के प्रयोग को नवीन विधान के रूप में नहीं माना जा सकता है।

47. **लताफत अली खां**[2] वाले मामले में जो विनिश्चय किया गया था, उसमें मात्र इस कथन से परे कोई कारण अन्तर्विष्ट नहीं है कि 'यदि कानूनी नियम अनुच्छेद 31-ख द्वारा प्रदत्त शक्तियों के भीतर

[1] (1964) 1 एस० सी० आर० 341.

[2] (1971) सप्ली० एस० सी० आर० 719.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

है, तो यह कहना कठिन है कि उस नियम की अतिरिक्त संवीक्षा अनुच्छेद 14, 18 आदि के अधीन भी की जानी चाहिए'।

48. इस निर्णय से यह स्पष्ट है कि चूंकि न्यायालय की यह राय थी कि 'किसी भी स्थिति में' यू० पी० इम्पोजिशन आफ सीलिंग आन लैण्ड होल्डिंग्स ऐक्ट एण्ड रूल्स (उत्तर प्रदेश जोतों पर अधिकतम सीमा का अधिरोपण अधिनियम और नियम) के आक्षेपित उपबन्ध भूमि सुधार की स्कीम के भाग थे और इसी कारण से उनको संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन चुनौती दिए जाने से संरक्षा प्राप्त थी, उसने इस प्रश्न की परीक्षा करनी आवश्यक नहीं समझा कि क्या उस अधिनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में रखा गया था, विरचित कानूनी नियम को भी वही उन्मुक्ति प्राप्त होगी।

49. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि **गोदावरी शुगर मिल्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **एस० बी० काम्बले और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा किया गया विनिश्चय इस मुद्दे से सम्बन्धित है और उससे पिटीशनर की इस दलील को समर्थन प्राप्त होता है कि संविधान के अनुच्छेद 31-ख के फायदे का विस्तार उस अधिनियम के अधीन जो कि नवम् अनुसूची में रखा गया है, निकाले गए आदेश या निकाली गई अधिसूचना पर नहीं किया जा सकता। जब कि मुम्बई उच्च न्यायालय ने, महाराष्ट्र एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (सीलिंग आन होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1961 को, जो कि नवम् अनुसूची में सम्मिलित किया गया था, अनुच्छेद 31-ख की संरक्षा प्रदत्त करते हुए, 1968, 1969 और 1970 वाले बाद के संशोधन अधिनियमों को उस संरक्षा का फायदा इस आधार पर दिया था कि वे मुख्य अधिनियम की धारा 28 के अनुषंगी या आनुषंगिक मात्र हैं। इस न्यायालय ने इस आधार पर इस मत को अस्वीकृत कर दिया था कि यदि अनुच्छेद 31-ख के अधीन दी गई संरक्षा का विस्तार किसी अधिनियम या विनियम के नवम् अनुसूची में सम्मिलित किए जाने के बाद उसमें किए गए संशोधनों पर किया जाता है, तो परिणाम यह होगा कि उन उपबन्धों को भी वह संरक्षा प्राप्त हो जाएगी जिनकी संवीक्षा उस विहित प्राधिकारी ने जिसमें संविधान का संशोधन करने की शक्ति निहित है, कभी की ही नहीं थी और जैसी कि वस्तुस्थिति है, जो कि

---

[1] (1975) 3 एस० सी० आर० 885=[1975] 3 उम० नि० प० 478.

संवीक्षा कर ही नहीं सकता था। न्यायालय के मतानुसार, वह राज्य विधानमण्डल को संविधान का संशोधन करने सम्बन्धी शक्ति देने की कोटि में इस प्रकार आएगा जिससे कि संविधान की नवम् अनुसूची की अन्तर्वस्तुओं में अभिवृद्धि हो जाएगी। न्यायाधिपति खन्ना, जिन्होंने न्यायालय की ओर से निर्णय दिया था, यह मत व्यक्त किया कि 'अनुच्छेद 31-ख संरक्षित क्षेत्र निश्चित करता है'; यह कि किसी ऐसे उपबन्ध का जिसके परिणामस्वरूप मूल अधिकारों की गारण्टी में हस्तक्षेप होता है, अर्थान्वियन बहुत ही कड़ाई के साथ किया जाना चाहिए और यह कि न्यायालय को इस बात की अनुज्ञा नहीं है कि वह ऐसे उपबन्ध के विस्तार को बढ़ाए या ऐसे संरक्षित क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार करे जो कि उस उपबन्ध की भाषा द्वारा न्यायोचित है। परिणामतः, यह अभिनिर्धारित किया गया कि संरक्षा प्राप्त करने के हक का विस्तार उन उपबन्धों पर नहीं किया जा सकता है जो कि नवम् अनुसूची में शामिल नहीं किए गए थे और यह कि यह सिद्धान्त इस तथ्य का ध्यान न रखते हुए भी लागू होगा कि क्या ऐसे उपबन्ध में जिसके सम्बन्ध में संरक्षा प्राप्त करने की कोशिश की गई है, नवीन, सारवान् विषय या ऐसे विषयों की बाबत उपबन्ध किया गया था जो कि मात्र उन विषयों के अनुषंगी या आनुषंगिक थे, जिनको कि पहले ही संरक्षा दी जा चुकी हैं। इस विनिश्चय से असंदिग्ध रूप से यह दर्शित होता है कि यह परिस्थिति कि नियंत्रण आदेश मात्र मुख्य अधिनियम के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था और उसका अनुषंगी या आनुषंगिक है, नवम् अनुसूची के विस्तार को संरक्षा देने की बात को इस आधार पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता कि मुख्य अधिनियम नवम् अनुसूची में समाविष्ट किया गया है।

50. किन्तु, विधि सम्बन्धी मुद्दे की बाबत लड़ाई जीतकर, जो कि निःसन्दिग्ध रूप से बहुत ही महत्व की है, कीमत नियतन के युद्ध में पिटीशनरों की पराजय हुई है, क्योंकि उनकी इस व्यथा में कोई भी सार नहीं है कि कीमत नियंत्रण आदेश अनुच्छेद 14, 19(1)(च) और 19(1)(छ) का उल्लंघन करता है। सबसे पहले अनुच्छेद 14 के अधीन दी गई चुनौती पर विचार करते हुए यह दलील पेश की गई है कि आक्षेपित आदेश, कच्चे माल के उत्पादन की लागत और भाड़े जैसी बातों से सम्बन्धित क्षेत्रीय भिन्नताओं की उपेक्षा करते हुए, सम्पूर्ण देश

1978(2) eILR(PAT) SC 1

को एक एकक के रूप में मानता है । अन्य शब्दों में, दलील यह है कि यह आदेश अति-समावेशी है, क्योंकि वह उन व्यक्तियों की अपेक्षा जिनकी बाबत वैध रूप से यह माना जा सकता है कि वे रिष्टि का उपचार करने के प्रयोजनार्थ जो कि विधि का लक्ष्य है, एक एकल वर्ग गठित करते हैं, उन व्यक्तियों के विस्तृत क्षेत्र पर समान भार अधिरोपित करके असमान के रूप में मानता है । प्रथमतः, विभिन्न रिट पिटीशनों में किए गए प्रकथन अनुच्छेद 14 की प्रयोज्यता को न्यायोचित ठहराने के लिए कहीं अधिक अस्पष्ट और व्यापक हैं । पिटीशनर इस स्वीकार्य आधार-सामग्री द्वारा यह दर्शित करने में असफल रहा है कि वह पूर्णतः पृथक वर्ग में आती है और इसी कारण से उसे कीमत नियतन के एकल आदेश के अवरोध के अध्यधीन नहीं किया जा सकता । यह हो सकता है कि सरसों के तेल के व्यापार को लागू होने वाली आर्थिक बातें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उसी प्रकार से भिन्न-भिन्न होती हैं जैसी कि किसी अन्य व्यापार की दशा में, और इसके अलावा व्यापार का नमूना भिन्न-भिन्न विकासशील क्षेत्रों, और उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पंजाब और उड़ीसा जैसे विनिर्माण करने वाले केन्द्रों में भिन्न-भिन्न हो सकता है । किन्तु, वह बात स्वयं इस दलील को न्यायोचित नहीं ठहरा सकती कि भिन्न-भिन्न कीमतें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए नियत की जानी चाहिएं और यह कि ऐसा करने में हुई असफलता के परिणामस्वरूप विभेद होगा । जहां कहीं भी सरसों के तेल के व्यापारी कार्य करते हैं, वे कीमत नियतन के प्रयोजन के लिए, विशेषकर एक एकल वर्ग को, उचित रूप से गठित करते हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि व्यापार के दो आधारभूत सिद्धान्त ये हैं कि सरसों के ऐसे दानों की लागत, जो कि सरसों के तेल की लागत का 94 प्रतिशत होता है और यह कि 3.12 किलोग्राम दाना निस्सृत होने के बाद 1 किलोग्राम तेल निकलता है । भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न कीमतों के नियतन से, इस पृष्ठभूमि में, इस बात का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा कि उपभोक्ता को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तु उपलब्ध की जानी चाहिए । उन क्षेत्रों मे जहां कि कीमतें कम होती हैं, उपभोक्ता माल के विलुप्त हो जाने की विनाशकारी प्रवृत्ति होती है तथा वे कुख्यात रूप से उन क्षेत्रों में, जहां कि ऊंची कीमतें होती हैं, चले जाते हैं । इसके अलावा पश्चिमी बंगाल के व्यापारियों की इस व्यथा का कि उन्हें

1978(2) eILR(PAT) SC 1

उत्तर प्रदेश से सरसों के दानों का आयात करना पड़ता है, यह उत्तर दिया जा सकता है कि किसी भी स्थिति में, पश्चिमी बंगाल को 1.3 लाख मीट्रिक टन के बराबर सरसों के तेल की कुल वार्षिक आवश्यकता का कम से कम 1/3 आयात करना पड़ता है। उत्तर प्रदेश सरसों के दानों के कुल उत्पादन का 66 प्रतिशत उगाता है, जब कि पश्चिमी बंगाल केवल 6 प्रतिशत ही उगाता है। वास्तव में जो प्रश्न है, वह यह है कि क्या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के व्यवहारियों की बाबत यह कहा जा सकता है कि उस प्रयोजन के सन्दर्भ में और सम्बन्ध में, जिसके लिए कीमत नियंत्रण आदेश निकाला गया है, उनकी स्थिति इतनी भिन्न है कि देश भर में व्यवहारी के लिए एक सामान्य कीमत की बाबत युक्तियुक्त रूप से यह कहा जा सकता है कि वह उनमें से कुछ के विरुद्ध विभेदकारी है। जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है, इस दलील का समर्थन करने के लिए कोई भी विश्वसनीय आधार मौजूद नहीं है और हम मात्र इस कारण से कि किन्हीं क्षेत्रों के व्यवहारियों को अन्य क्षेत्र से अपने कच्चे माल का आयात करना पड़ता है, अति-समावेशन के आरोप को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। पश्चिमी बंगाल जैसे क्षेत्र में व्यापारावर्त और उपभोग की ऊंची दर, कदाचित्, भाड़े की अतिरिक्त लागत को सरलता के साथ संविलीन कर सकती है। अतः हम, **गुजरात राज्य** बनाम **श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति मेथ्यू की भाषा का उपयोग करते हुए, यह अभिनिर्धारित करते हैं कि भारत सरकार ने, सम्पूर्ण देश के लिए सरसों के तेल की एक सामान्य कीमत नियत करके, हिरोड़ की भांति कार्य किया है जिसने उन सभी पुरुषों-बच्चों को मृत्यु के घाट उतार देने का आदेश दिया था, जिनका जन्म किसी विशिष्ट दिन हुआ था, क्योंकि उनमें से एक उसी दिन उसकी अवनति का कारण बनेगा।

51. यह दिलचस्प है कि कीमत नियतन के मामले में प्राधिकारी जो भी ढंग अपनाते हैं, वह प्रायः विरोधी तथा परस्पर विरोधी, इस या उस कारण से चुनौती की विषय-वस्तु बनाया जाता है। **सरस्वती इण्डस्ट्रियल सिण्डीकेट लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में चीनी

---

[1] (1974) 3 एस० सी० आर० 760, 782.

[2] (1975) 1 एस० सी० आर० 956=[1975] 1 उम० नि० प० 578.

के विनिर्माताओं की ओर से पेश की गई दलीलों में से एक यह थी कि चीनी की कीमत भिन्न क्षेत्रों के आधार पर अवधारित नहीं की जानी चाहिए थी, बल्कि उनका अवधारण अखिल भारतीय स्तर पर या पांच क्षेत्रों के एकक के लिए किया जाना चाहिए । इस न्यायालय ने यह दलील अस्वीकृत कर दी, किन्तु वह मामला ऐसा उदाहरण है कि आवश्यक वस्तु की कीमत नियत करने के प्रयोजन के लिए, देश का पृथक क्षेत्रों में विभाजन करने से इस प्रकार सामान्य रूप से स्वीकार्य फल नहीं प्राप्त हो सकता । इसमें सन्देह नहीं है कि यदि इस आधार पर कि वहां पर व्यापारियों को बाहर से कच्चे माल का आयात करने की आवश्यकता नहीं होती है, उत्तर प्रदेश के लिए निचली कीमतें नियत की जाती, तो यह शोर-गुल मचाया गया होता कि भारत सरकार इस असंगत कारण से किसी विशिष्ट क्षेत्र के व्यवहारियों को इसलिए सता रही है कि उस क्षेत्र में कच्चा माल बहुतायत में पैदा होता है । अन्तिम रूप से विश्लेषण करने पर, कीमत नियतन की प्रक्रिया को निश्चित रूप से कार्यपालिका के निर्णय पर छोड़ना पड़ेगा और जब तक कि यह बात स्पष्ट न हो कि व्यवहारियों के किसी वर्ग के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण विभेद किया गया है, कीमत नियतन के प्रक्रियात्मक आधार को, साधारण मामले में, विधिमान्य स्वीकार करना होगा ।

52. अब हम पिटीशनर की इस दलील पर विचार करेंगे कि क्या कीमत नियतन आदेश संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) और 19(1)(छ) के अधीन पिटीशनर के अधिकारों का अतिक्रमण करता है । मैसर्स पराग आईस एण्ड आयल मिल्स जो कि 1977 के रिट पिटीशन संख्या 712 में पिटीशनर हैं, का पक्षकथन निम्नलिखित रूप में है—

> "जब कि कीमत नियंत्रण आदेश निकाला गया था, उस समय सरसों के तेल के उत्पादन की औसत लागत लगभग 1351.10 रुपये प्रति क्विटल अर्थात् 13.51 रुपये प्रति किलोग्राम थी । उपरिव्यय लागत को विचार में लेते हुए तथा युक्तियुक्त लाभ के लिए अनुज्ञात करते हुए सरसों के तेल की उचित विक्रय-कीमत कारखाने के द्वार पर 14.10 रुपये प्रति किलोग्राम आएगी । चूंकि पिटीशनर थोकफरोश हैं, इसलिए वे अन्य थोकफरोशों और खुदरा व्यापारियों को अपना माल बेचते हैं जिनमें से कुछ को अपना माल पिटीशनर के कारखाने से काफी

1978(2) eILR(PAT) SC 1

दूरी पर भेजना पड़ता है। आक्षेपित आदेश के अधीन सरसों के तेल की कीमत 10 रुपये प्रति किलोग्राम नियत की गई है, जिससे यह अभिप्रेत है कि पिटीशनरों को अपना माल लगभग 8.50 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से खुदरा व्यापारियों को बेचना पड़ता है, क्योंकि खुदरा व्यापारियों को उसकी लागत के लिए कम से कम 1.50 प्रति किलोग्राम तथा कुछ लाभ के लिए व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार से पिटीशनरों को कीमत नियंत्रण आदेश के परिणामस्वरूप 5 रुपये प्रति किलोग्राम से अधिक की हानि उठानी पड़ती है। इस पद्धति द्वारा पिटीशनर अपनी सम्पत्ति अर्जित करने और धारण करने तथा सरसों के तेल को निस्सृत करने, उसका विनिर्माण करने और विक्रय करने का व्यापार या कारोबार चलाने के अपने अधिकार से वंचित कर दिए गए हैं। पिटीशनरों के मतानुसार 10 रुपये प्रति किलोग्राम की कीमत मनमानी है और उसमें बुद्धि का प्रयोग नहीं किया गया है। मैसर्स पराग आईस एण्ड आयल मिल्स के रिट पिटीशन में जो ये अभिकथन किए गए हैं, उनकी बाबत यह माना जा सकता है कि वे अन्य पिटीशनरों की व्यथा का मोटे तौर से प्रयोग करते हैं जो कि न्यूनाधिक समान रूप से स्थित है।"

53. संघ सरकार की ओर से, भारत सरकार के सिविल प्रदाय और सहकारिता मंत्रालय के उप-सचिव श्री वी० श्रीनिवासन ने इन अभिकथनों का प्रत्याख्यान किया है। श्री श्रीनिवासन ने अपने शपथपत्र में यह कथन किया है कि मार्च, 1977 में, सरसों के अनेक तेलों का उपभोग करने वाले केन्द्रों में सरसों के तेल की खुदरा कीमत 9.75 रूपये और 10.81 रुपये प्रति किलोग्राम की दर के बीच थी। इस तथ्य को देखते हुए कि सरसों के तेल की कीमत इस तथ्य के बावजूद लगातार बढ़ रही है कि अन्य खाद्य तेलों की कीमतें नीचे गिर रही हैं, आक्षेपित आदेश निकालना आवश्यक हो गया था। उपलभ्य स्टाक बाजार से अचानक गायब हो गया और सरकार को आवश्यक वस्तु का वितरण या नियंत्रण करने की दृष्टि से लोकहित में हस्तक्षेप करना पड़ा है। इन परिस्थितियों में कीमत का नियतन निश्चित रूप से आनुमानिक था, जिस प्रयोजन के लिए सरकार उन कीमतों जो कि उस समय बाजार में अभिभावी थीं जब कि माल

1978(2) eILR(PAT) SC 1

अबाध रुप से उपलब्ध था, अन्य खाद्य तेलों की कीमतों के साधारण स्तर, उपभोक्ताओं की कार्य शक्ति और उस हानि की रकम को जिसे उद्योग उन्नतशील वर्षों में अधिक लाभ कमाने के बाद संविलीन करने में समर्थ हुआ था, लेखा में लिया था। उस शपथपत्र में इसके आगे यह कहा गया है कि 10 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से भी पिटीशनरों के लिए कम लाभ कमाया जाना सम्भव था, किन्तु व्यवहारियों ने कोई लाभ कमाया या नहीं, कीमत नियंत्रण आदेश की विधिमान्यता इस आधार पर चुनौती देने के लायक नहीं थी कि व्यवहारियों को उस दशा में हानि उठानी पड़ेगी यदि उन्हें 10 रूपये प्रति किलोग्राम की दर से सरसों का तेल बेचने के लिए बाध्य किया जाएगा। सरकार ने इस प्रश्न को कि उपभोक्ता के लिए कौन सी कीमत उचित है, सामने रखा था और मात्र उस ढंग से ही आवश्यक वस्तु अधिनियम के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति प्रभावी रूप से की जा सकती थी।

54. इसके अलावा श्री श्रीनिवासन के शपथपत्र में यह भी कहा गया है कि सरसों मुख्यत: रबी की फसल में, अर्थात् सितम्बर से लेकर अक्तूबर और फरवरी से लेकर मार्च के बीच उगाई जाती है और विपणन का व्यस्ततम मौसम अप्रैल से जून तक रहता है। सरसों की फसल मोटे तौर से छोटे किसान उगाते हैं, जिनके पास प्रतीक्षा करने की क्षमता नहीं होती है और जो कि फसल के बाद अपने उत्पादन का व्ययन उतनी शीघ्रता के साथ, जितनी कि सम्भव हो, करने की उत्सुक्ता में, अप्रैल और जून के बीच अपना उत्पाद बेचते हैं। इससे यह अर्थ निकलता हुआ बताया गया है कि पेराई करने वाले वर्ष की प्रथम तिमाही के दौरान क्रय की जाने वाली वस्तुओं का अधिकांश भाग खरीद लेते हैं और इसी कारण से पिटीशनर की सुनवाई इस दलील के सम्बन्ध में नहीं की जा सकती कि आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश के प्रवृत्त होने के बाद वह लागत तेल का उत्पादन करने में लगानी पड़ती है। अवधारण करने के लिए सरसों के दाने की कीमत को उन्हें सरसों के विचार में लिया जाना चाहिए। इस शपथपत्र में ऐसी सारिणी भी है जो कि पेराई करने वालों द्वारा संदत्त कीमतें और सरसों के दाने के लिए किसानों द्वारा प्राप्त कीमतें दर्शित करती है। सरकार के मतानुसार, सरसों के तेल की उचित कीमत भारित औसत कीमत के या सरसों के दाने की मध्यमान कीमत के आधार पर नियत की जा सकती थी किन्तु व्यवहारियों को कष्ट न होने देने की

दृष्टि से उसकी कीमत, बाजार में सरसों के दाने के बड़े परिमाण में आने वाली कालावधि के दौरान अभिभावी बाजार की कीमतों में से सबसे ऊंची और सबसे नीची कीमतों की औसत के आधार पर 10 रुपये प्रति किलोग्राम नियत की गई थी। 10 भिन्न-भिन्न केन्द्रों अर्थात् अलीगढ़, इलाहाबाद, कानपुर, गोहाटी, हाथरस, जालन्धर, मोगा, रोहतक और श्रीगंगानगर, में जो-जो कीमतें थीं, उनके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि उन्हें विचार में लिया गया है और उन कीमतों से लगभग 350 रुपये प्रति क्विन्टल सरसों के दाने की मध्यमान कीमत प्राप्त होती है और उस आधार पर खुदरा कीमत 10 रुपये से कम अर्थात् 9.95 रुपये प्रति किलोग्राम आती है।

55. इन विरोधी दलीलों और उन आकड़ों पर विचार करते हुए जो कि हमारे समक्ष उसके समर्थन में पेश किए गए हैं, हम पिटीशनर की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि कीमत नियंत्रण आदेश से संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और 19(1) (छ) के अधीन प्रदत्त उनके अधिकारों का अतिक्रमण होता है। पहली बात यह है कि इन रिट पिटीशनों के इस पक्षकथन की परिशुद्धता को अवधारित करना असम्भव है कि जैसे-जैसे कि सरसों की पेराई चलती है, वे मासानुमास और सप्ताहनु सप्ताह सरसों के दाने खरीदते चलते है। हमें भारत सरकार की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र में अन्तर्विष्ट इस कथन पर सन्देह करने के लिए कोई भी कारण दिखाई नहीं देता है कि सरसों के दाने उगाने वाले अधिकांश ऐसे छोटे कृषक होते हैं जिनके पास प्रतीक्षा करने की कोई क्षमता नहीं होती है और इसी कारण से वे अपना उत्पाद फसल काटने के तुरन्त बाद मार्च और जून के बीच बेचने के लिए विवश होते हैं। यदि उस कालावधि के दौरान अभिभावी सरसों के दानों की कीमतें विचार में ली जाती हैं, तो यह स्वीकार करना कठिन है कि 10 रुपये प्रति किलोग्राम की कीमत उतने स्पष्ट रूप से युक्तियुक्त है कि वह उससे सम्पत्ति धारण करने या व्यापार करने या व्यवसाय करने के पिटिशनर के अधिकार का अतिक्रमण होता है।

56. पिटीशनरों की ओर से हमारे समक्ष बराबर यह दलील दी गई कि कच्चे माल अर्थात् सरसों के दाने की अधिकतम कीमत साथ ही साथ नियत किए बिना तेल की कीमत नियत करना व्यर्थ है। इस दलील का प्रभावी उत्तर प्रत्यर्थी के उस अभिवाक से प्राप्त हो जाता है कि

1978(2) eILR(PAT) SC 1

फसल काटने के तुरन्त बाद पिटीशनर बहुत बड़ी मात्रा में क्रय करते है और सरसों के दाने का व्यापार करने के नमूने पर विचार करते हुए सरसों के दाने की कीमत को नियंत्रित करना इस दृष्टि से पूर्णतया अनावश्यक है कि उससे सरसों के तेल की कीमत प्रभावी रूप से नियंत्रित हो जाएगी। यह महत्वपूर्ण है कि जहां सरसों के दाने सितम्बर, 1977 में 480 रुपये और 520 रुपये प्रति क्विन्टल के बीच कीमत की दर से इन्हीं क्षेत्रों में बेचे जाते हैं, वहां आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश प्रख्यापित हो जाने के बाद कीमतें घटकर 365 रुपये और 390 रुपये प्रति क्विंटल के बीच आ गई थी। पिटीशनरों ने इसका प्रत्याख्यान नहीं किया है किन्तु वे इस तथ्य को कीमत नियंत्रण आदेश की वैधता का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ असंगत मानती है। उनकी दलील, जिसमें हमें कोई सार दिखाई नहीं पड़ता है, यह है कि कीमत नियंत्रण आदेश के परिणाम का सहारा यह विनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए नहीं लिया जा सकता है कि सरसों के तेल की कीमत वैध रूप से स्वीकार्य सिद्धान्तों के अनुसार नियत की गई थी। जैसी कि कहावत है, पुडिंग का सबूत खाने में है कि और कोई भी न्यायालय इस तथ्य के प्रति अपनी आखें मूंद नहीं सकता है कि कीमत नियंत्रण आदेश के कारण कच्चे माल की कीमतों को नीचे लाने का श्रेयस्कर और मूर्त्त परिणाम सामने आया है।

57. जैसा कि **बृज लाल मणि लाल एण्ड कम्पनी और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त गया किया था, इन मामलों में अर्थान्वियन का आधारिक नियम यह है कि मात्र शाब्दिक या यन्त्रवत अर्थान्वयन वहां समुचित नहीं होता है जहां कि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों जैसे कि सांविधानिक उपबन्धों पर विधायी शक्ति के प्रयोग और तदधीन किए गए रक्षोपायों का प्रभाव का सम्बन्ध है, इस प्रकार के मामलों में, अर्थान्वियन के दो नियमों को मन में रखना पड़ता है; (1) यह कि न्यायालयों का झुकाव साधारण रूप से अपने समक्ष आक्षेपित विधायी अध्युपाय की सांविधानिकता के प्रति इस उपधारणा के आधार पर होता है कि विधानमण्डल किसी सांविधानिक रक्षोपाय या अधिकार का उल्लंघन जानबूझ कर नहीं करेगा; (2) यह कि ऐसी अधिनियमिति का अर्थान्वयन करते समय न्यायालय को चाहिए कि वह आक्षेपित अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन की उस रिष्टि को जिससे निवारित करने की कोशिश

[1] (1970) 1 एस० सी० आर० 400,409=[1970] 2 उम० नि० प० 319.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

वह अधिनियम करता है, परीक्षा करे और ऐसी बातों में से उसके वास्तविक विस्तार और अभिप्राय को अभिनिश्चित करे।

58. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3(1) केन्द्रीय सरकार को आवश्यक वस्तुओं की कीमतें नियत करनें के लिए उस दशा में सशक्त करती है, यदि उसकी यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उचित कीमत पर उनके साम्यापूर्ण वितरण और उपलभ्यता को सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है। धारा 3 की उपधारा (2)(ग) में यह उपबंध किया गया है कि उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकल प्रभाव डाले बिना, उस उपधारा के अधीन किए गए किसी आदेश में उस कीमत को नियंत्रित करने के लिए उपबन्ध किया जा सकता है जिस पर कोई आवश्यक वस्तु खरीदी या बेची जा सकती है। इन उपबन्धों का मुख्य प्रयोजन उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तुओं की उपलभ्यता को सुनिश्चित करना है। और यद्यपि उत्पादक के साथ स्पष्ट रूप से किए जाने वाले अन्याय को प्रोत्साहित नहीं किया जाना है, तथापि विनियोजन पर युक्तियुक्त प्रत्यागम का होना या युक्तियुक्त दर से लाभ का होना आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) और 3 (2)(ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को अग्रसित करने की दृष्टि से की गई कार्यवाही की विधिमान्यता के लिए अनिवार्य नहीं है। उपभोक्ता के हित को सामने रखना होता है और इस मुख्य विचार से कि सामान्य व्यक्ति को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तु उपलभ्य की जानी चाहिए प्रत्येक अन्य विचार के ऊपर अधिमानता प्राप्त होनी चाहिए।

59. पिटीशनरों की ओर से पेश किए गए आंकड़ों से हमारे मन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है, जिसका उद्देश्य यह दर्शित करना है कि कीमत नियंत्रण आदेश के परिणामस्वरूप उन्हें सरसों के तेल के विक्रय पर लगभग पांच रुपये प्रति किलोग्राम की हानि उठानी पड़ती है। इस मुद्दे के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम प्रत्यर्थी के बार-बार व्यक्त इस विचार की उपेक्षा करेंगे कि पिटीशनरों ने विगत वर्षों में बहुत लाभ कमाया है और यह कि उनके समुत्थान पर्याप्त रूप से इतने उत्कर्षपूर्ण हैं कि वे अस्थायी कालावधि के लिए थोड़ा सा नुकसान सहन करने में समर्थ हैं। किन्तु विगत वर्षों में पिटीशनरों द्वारा कमाए गए लाभों की सीमा विषयक समाधानकारी सबूत के अभाव में भी, हमारी राय यह है कि

इन परिस्थितियों से कि पिटीशनरों को कीमत नियंत्रण आदेश के प्रख्यापित होने के तुरन्त बाद संक्षिप्त कालावधि के लिए हानि उठानी पड़ सकती है, वह आदेश सांविधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं हो जाएगा। बाजार में अभिभावी कीमतों के ढांचे पर आर्थिक बातों की परस्पर क्रिया का मांग तथा प्रदाय की विधियों का अन्तिम रूप से प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। यदि व्यवहारी 10 रुपये प्रति किलोग्राम से अधिक की दर से परिसाधित उत्पाद का विक्रय विधिपूर्ण रूप से नहीं कर सकता है तो उत्पाद की कीमत के अनुसार कच्चेमाल की कीमत अपने आप ही समायोजित होना अवश्यम्भावी है। बाद वाली घटनाओं से निःसंदिग्ध रूप से ऐसी परस्पर क्रिया और ऐसी अनुकूल प्रतिक्रिया का प्रभाव दर्शित होता है जो कि कीमत नियंत्रण आदेश के परिणामस्वरूप सरसों के दाने की कीमत पर पड़ता है किन्तु इन सब बातों के अलावा, इस प्रकार के मामलों में यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है, जैसा कि न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने **वी० बैनर्जी** बनाम **अनीता पान**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया था, कि ऐसे उपबन्धों पर सामाजिक रूप से रचनात्मक दृष्टि से, न कि वैध रूप से संकुचित ढंग से किसी स्पष्ट असांविधानिक कमजोरी का पता लगाने की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए; यह कि जब समुदाय के बड़े भाग को प्रभावित करने वाली विधियां अधिनियमित की जाती हैं, तो अप्रत्याशित और दुर्भाग्यपूर्ण बातें होनी आवश्यक हैं और यह कि परेशानी के बिना, एसा सामाजिक विधान, जिसका प्रभाव स्थिर अधिकारों पर पड़ता हो, वास्तव में असम्भव है।

60. प्रत्येक सम्भावित दृष्टिकोण से इस मामले पर विचार करने पर, हम पिटीशनरों की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश इतना अयुक्तियुक्त है कि वह सांविधानिक रूप से अविधिमान्य है। जैसा कि न्यायाधिपति बेग ने **सरस्वती इंडस्ट्रीयल सिंडीकेट**[2] वाले (उपर्युक्त) मामले में मत व्यक्त किया था, यदि कीमत नियतन के लिए अपनाए गए आधार के बारे में यह दर्शित नहीं किया जाता है कि वह स्पष्ट रूप से इतने युक्तियुक्त हैं कि वह कीमत नियत करने की शक्ति से अधिक है, तो वह सांविधानिक आज्ञा का अनुपालन पार्यप्त रूप से है।

---

[1] (1975) 2 एस० सी० आर० 774, 782=[1975] 2 उम० नि० प० 257

[2] (1975) 1 एस० सी० आर० 956=[1975] 1 उम० नि० प० 578.

61. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने यह भय व्यक्त किया कि लाभकारी कीमत के नियतन के परिणामस्वरूप विनिर्माता बाजार में टिक नहीं पाएंगे और इस प्रकार से आवश्यक वस्तु के प्रदाय का स्रोत ही सूख जाएगा, जिससे कि आवश्यक वस्तु अधिनियम का यह उद्देश्य विफल हो जाएगा कि उपभोक्ता की अपनी आधारिक आवश्यकता की पूर्ति उचित कीमत पर होनी चाहिए। इस दलील में गलती यह है कि कीमत नियंत्रण आदेश के प्रख्यापित होने के तुरन्त पूर्व उपभोक्ता को ऐसी कीमत पर सरसों का तेल प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था, जो कि वह युक्तियुक्त रूप से दे सकता था। यदि आदेश जारी किए जाने के बाद प्रदाय की स्थिति में कोई भी सुधार नहीं होता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि कीमत नियंत्रण आदेश के प्रवर्तन का वह परिणाम था। उस समय उस आदेश के बारे में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई है।

62. यह विवेचन **श्री मीनाक्षि मिल्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किए बिना पूर्ण नहीं होता है। उस मामले में जो प्रश्न उत्पन्न हुआ था, वह सूत के धागे की उचित कीमत नियत करने वाली अधिसूचना की विधिमान्यता के सम्बन्ध में था। उसमें पिटीशनरों की ओर से यह दलील दी गई थी कि जो कीमत नियत की गई है, वह मनमानी है, क्योंकि रूई की कीमत में होने वाले उतार चढाव को नहीं लिया गया है, कच्चे माल की कीमत मजदूरी के कारण दायित्व को और व्यापारी के लिए युक्तियुक्त लाभ सुनिश्चित करने की आवश्यकता को विचार में नहीं लिया गया था; और इन सभी बातों के अलावा, उद्योग के लिए अपने विनियोजन पर युक्तियुक्त प्रत्यागम सुनिश्चित नहीं किया गया था। इस न्यायालय ने इस आधार पर इन दलीलों को अस्वीकृत कर दिया था कि जिस प्रकार से उद्योग खुले बाजार में आर्थिक बातों के कारण कीमतों में उतार-चढ़ाव के सम्बन्ध में शिकायत नहीं कर सकता है, उसी प्रकार से वह आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना के परिणामस्वरूप कीमतों में हुई कुछ वृद्धि या कमी के बारे में भी शिकायत नहीं करता है, क्योंकि ऐसी वृद्धि या कमी आर्थिक बातों पर भी आधारित है। इस दलील पर विचार करते हुए कि विनिर्माताओं

(1975) 1 एस० सी० आर० 956=[1975] 1 उम० नि० प० 578.

को युक्तियुक्त लाभ प्राप्त करने के सम्बन्ध में आश्वासित होना चाहिए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपभोक्ता के लिए उचित कीमत सुनिश्चित करना आवश्यक वस्तु अधिनियम के मुख्य उद्देश्य और प्रयोजन हैं और यह कि यदि उत्पादक का लाभ सामने रखा जाएगा, तो उससे वह उद्देश्य ही पूरी तरह से ओझल हो जाएगा। न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए, मुख्य न्यायाधिपति रे ने मत व्यक्त किया था कि--

"उद्योग व्यापार या वाणिज्य के क्षेत्र में विधि द्वारा अधिरोपित निर्वन्धन की युक्तियुक्तता का अवधारण करने में यह बात याद रखनी है कि मात्र इस तथ्य से कि उनमें से कुछ जो कि इसमें लगे हुए हैं, यह अभिकथन कर रहे हैं कि इस विधि के अधिरोपण के पश्चात् हानि हुई है, वह विधि अयुक्तियुक्त नहीं हो जाएगी, अपनी प्रकृति से ही उद्योग या व्यापार या वाणिज्य को आर्थिक और कभी-कभी सामाजिक तथा राजनीतिक बातों के कारण उन्नति और अवनति को कालावधि से गुजरना पड़ता है। अधिक निर्बाध अर्थव्यवस्था में जब उपभोक्ता माल, जैसे कि खाद्य पदार्थ, कपड़ा और तत्प्रकार की अन्य वस्तुएं उचित कीमत को उपलभ्य करने की बात सुनिश्चित करने की दृष्टि से नियंत्रित करना पड़ता है। उस समय सरकार से यह अपेक्षा करना अव्यावहारिक प्रतिपादन है वह कीमत नियत करने के लिए आयोग नियुक्त करने जैसा काम करे।"

विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय में से एक दूसरा अवतरण जिसका महत्वपूर्ण सम्बन्ध प्रस्तुत मामले से है, निम्नलिखित प्रभाव का है—

"जब कि उपलभ्य स्टाक भूमिगत हो जाते हैं और सरकार को लोकहित में वितरण और उपलभ्यता को नियंत्रित करने की दृष्टि से कदम उठाने पड़ते हैं, तो किसी कारण से कीमत का नियत करना मात्र आनुभाविक है। बाजार की कीमतें ऐसे समय पर जबकि माल भूमिगत नहीं हुआ था और आबाध रूप से उपलभ्य था, कीमतों में साधारण वृद्धि ऐसे उपभोक्ता की क्षमता विशेषकर उपभोक्ता माल जैसे कि खादय पदार्थ या कपड़ा आदि की दशा में हानि की वह रकम जितनी उद्योग उत्कर्ष वर्षों के दौरान कमाए लाभों के बाद सहन करने में समर्थ है ये सभी बातें कृत्रिम कमियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न की गई

आपात स्थिति में उचित मूल्य की गणना करने में विचार में ली जाती हैं।"

63. मामले के इस पहलू के सम्बन्ध में न्यायालय ने, **सेक्रेटरी आफ एग्रीकल्चर** बनाम **सैन्ट्रल रोज रिफाईनिंग कम्पनी**[1] वाले मामले में किए गए अमरीकी विनिश्चय में से इस प्रभाव का एक अवतरण सानुमोदन प्रोद्धृत किया था कि न्यायालयों को विषम परीक्षणात्मक आर्थिक विधान की क्रूरताओं और असाम्याओं के अनुतोष के लिए अधिकरणों में संपरिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

64. पिटीशनरों के काउन्सेल ने **पानीपत को-आपरेटिव शूगर मिल्स** बनाम **भारत संघ**[2] और **अंकापल्ले को-आपरेटिव एग्रीकल्चरल एण्ड इंडस्ट्रीयल सोसायटी लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों का अवलम्ब अपनी इस दलील के समर्थन में लिया कि उत्पादकों या व्यवहारियों के लिए युक्तियुक्त प्रत्यागम सुनिश्चित किए बिना कीमत का नियतन असांविधानिक होता है। जैसा कि **मिनाक्षी मिल्स लि०** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया था, इस दलील की कमजोरी यह है कि दोनों ही विनिश्चय आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(3ग) को भाषा के आधार पर किए गए थे, जिसके अधीन कानूनी रूप से यह बाध्यकारी है कि विनिर्माण की जाने वाली चीनी के कारबार में लगाई गई पूंजी के रूप में, उद्योग के लिए युक्तियुक्त प्रत्यागम सुनिश्चित किया जाए। अतः ये विनिश्चय अधिनियम की धारा 3(2)(ग) के साथ पठित धारा 3(1) के अधीन कीमत नियतन के मामलों में लागू नहीं होते हैं। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3क), (3ख) और (3ग) के अधीन आने वाले मामले पूरी तरह के भिन्न प्रवर्ग से सम्बन्धित हैं।

65. कीमत नियतन वाले मामलों में **प्रीमियर आटोमोबाईल्स लिमिटेड और एक अन्य आदि** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में प्रायः उद्धृत किए जाने वाले विनिश्चय को प्रोद्धृत करने का आम परिपाटी है, जिसका

---

[1] (1950) 94 लॉ एडीशन 381.

[2] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 536=[1973] 1 उम० नि० प० नि० स० 49.

[3] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 734.

[4] (1974) 2 एस० सी० आर० 398=[1974] 1 उम० नि० प० 651.

[5] (1972) 2 एस० सी० आर० 526.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

सम्बन्ध मोटरकारों की कीमत के नियतन से था। उसी समय ही यह महसूस किया गया था कि वह विनिश्चय कीमत नियतन के मामले में कोई नजीर नहीं है और विशिष्ट मामले के विशिष्ट कारणों से ही किया गया था। रिपोर्ट के पृष्ठ 335 पर न्यायाधिपति ग्रोवर ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए, निर्णय के प्रारम्भ में यह मत व्यक्त किया था: "सभी पक्षकारों के काउन्सेलों और विद्वान् एटार्नी जनरल ने इस बात के सम्बन्ध में सहमति व्यक्त की है कि उन तकनीकी या विधिक मुद्दों के बावजूद जो कि अन्तर्ग्रस्त हों, हमें अपने निर्णय को सही और तर्कसंगत सिद्धान्तों की परीक्षा पर आधारित करना चाहिए और उस आयोग की जो कि विशेषज्ञ निकाय था और जिसकी अध्यक्षता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश ने की थी रिपोर्ट से विचलन के लिए केवल तभी निदेश दिया जाना चाहिए जब कि यह दर्शित कर दिया जाए कि स्थापित सिद्धान्तों से विचलन हुआ है या आयोग के निष्कर्षों के बारे में यह दर्शित कर दिया जाता है कि वह स्पष्टतः गलत या त्रुटिपूर्ण है। पक्षकारों की सहमति के आधार पर वह न्यायालय इस प्रकार से, मोटरकारों की कीमत नियतन से सम्बन्धित प्रत्येक विस्तृत ब्यौरे पर विचार करने के लिए अधिकरण में संपरिवर्तित हो गया था। दूसरी बात यह है कि जहां तक विस्तारण खण्ड का सम्बन्ध है, न्यायालय ने पृष्ठ 543 पर यह अभिलिखित किया था कि सरकार की ओर से ऐसा कोई विवाद नहीं उठाया गया था और एटार्नी जनरल ने उस स्थिति को स्वीकार किया था कि विस्तारण या अविस्तारण के लिए उचित ढंग अपनाया जाना चाहिए। तीसरी बात यह है कि रिपोर्ट के पृष्ठ 944 से यह बात स्पष्ट है कि विद्वान् एटार्नी जनरल ने इस बात के सम्बन्ध में अपनी सहमति व्यक्त की थी कि विनिर्माताओं को अपने विनियोजन पर युक्तियुक्त प्रत्यागम अवश्य ही अनुज्ञात किया जाना चाहिए। इस प्रकार से वह विनिश्चय भागतः पक्षकारों के बीच हुई सहमति के आधार पर और भागतः विधिक वर्ग द्वारा दी गई रियायतों के आधार पर किया गया था। यही कारण है कि **प्रीमियर आटोमोबाईल्स**[1] वाले (उपर्युक्त) मामले में किए गए निर्णय को नज़ीर के रूप में नहीं माना जा सकता है और उससे कीमत नियतन वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों में कोई भी उचित सहायता प्राप्त नहीं हो सकती है।

[1] (1972) 2 एस० सी० आर० 526.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

66. इस दलील में कि कीमत नियंत्रण ग्रादेश मनमाना है, क्योंकि वह समय की दृष्टि से सीमित नहीं है, कोई भी सार नहीं है। जैसी कि स्थिति है, ग्रावश्यक वस्तु ग्रधिनियम की धारा 3(2) के साथ पठित धारा 3(1) के ग्रधीन पारित ग्रादेशों का उद्देश्य मुख्यत: उन ग्रत्यावश्यक स्थितियों का मुकाबला करना है जिनकी ग्रोर तुरन्त ग्रौर सामयिक ध्यान ग्राकृष्ट किए जाने की ग्रावश्यकता है। यदि किसी कीमत नियंत्रण ग्रादेश के परिणामस्वरूप प्रदाय की स्थिति में सुधार होता है या यदि उस कालावधि के दौरान जिसमें ऐसा ग्रादेश प्रवृत्त होता है, कीमतों में ऐसी गिरावट ग्राती है जो कि किसी ग्रावश्यक वस्तु को मामूली उपभोक्ता की पहुंच के भीतर ला देती है, तो उस ग्रादेश का न्यायौचित्य समाप्त हो जाएगा ग्रौर उसे सभी ग्रधिसंभाव्यताग्रों में, वापिस ले लिया जाएगा। प्रस्तुत मामले में जो बात हुई है, वह वास्तव में यही है। ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि प्रदाय की स्थिति में सुधार हो गया है या, किसी भी स्थिति में ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार ने उस स्थिति का इस प्रकार से जायजा लिया है, ग्रत: वह ग्रादेश ग्रभी हाल में वापिस ले लिया गया है।

67. जैसा कि संघ सरकार की ग्रोर से फाइल किए गए शपथ-पत्र से दर्शित होता है, पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने उन परिस्थितियों पर बहुत जोर दिया है, कि कीमत नियंत्रण ग्रादेश ने उन परिस्थितियों को विचार में नहीं लिया था कि सरसों के तेल के उत्पादन की लागत में बिचौलिए के लाभ का पर्याप्त रूप से बड़ा भाग भी सम्मिलित है। इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि छोटे स्तर पर पेराई करने वाले बहुत बड़ी लागत नहीं लगा सकते हैं ग्रौर ग्रपनी सीमित पूंजी को ग्रवरुद्ध नहीं कर सकते हैं, इसी कारण से उन बिचौलियों के जो कि कच्चे माल के क्रय में बड़ी पूंजी के विनियोजन की स्थिति में होते हैं, ग्रौर जो कि स्वभावत: ग्रपनी लागत पर उचित प्रत्यागम प्राप्त करने की ग्राशा रखते हैं, मध्यक्षेप का सहारा लेने की ग्रावश्यकता पड़ती है। बिचौलिए का मध्यक्षेप सभी व्यापारों ग्रौर कारबारों की ग्रभिस्वीकृत वास्तविकता है। यह तथ्य कि बिचौलिए के लाभ के कारण उस माल की कीमत में वृद्धि हो जाती है, जिसे उपभोक्ता को देना होता है, इस न्यायालय ने **नरेन्द्र कुमार ग्रौर ग्रन्य** बनाम **भारत संघ ग्रौर ग्रन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि वह स्वयं

---

[1] (1960) 2 एस० सी० ग्रार० 375.

सिद्ध है। जैसा कि उस मामले में मत व्यक्त किया गया था, चूंकि बिचौलिए के प्रभारों के कारण, प्रायः पर्याप्त राशि बढ़ जाती है, इसलिए आधुनिक समय में सामाजिक नियंत्रण के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की यह कोशिश रही है कि बिचौलिए के क्रियाकलाप को कम से कम रखा जाए और उनके स्थान पर उत्पादकों की सहकारी विक्रय सोसायटियां और उपभोक्ताओं की सहकारी क्रय सोसायटियां बनाने की कोशिश की जाए । बिचौलिए के निकल जाने के कारण परेशानी और असुविधा होना अवश्यंभावी है किन्तु परिसाधित उत्पाद की लागत में अन्तिम बचत के परिणामस्वरूप वह असुविधा काफी कम हो जाती है । पिटीशनरों की दलील, वास्तव में, ऐसे संकुचित दुराग्रह की कोटि में आती है कि वह अपना कारबार उस रूप में, जैसा कि वे चाहें, प्रायः प्रारम्भिक रीति से, लोकहित पर पड़ने वाले प्रभाव का ध्यान न रखते हुए, चलाने के हकदार हैं । किन्तु सम्पत्ति के अधिकार आत्यंतिक नहीं होते हैं और जैसा कि सम्पत्ति का अधिकार महत्वपूर्ण है, जनता का यह अधिकार कि सामान्य हित में ऐसे अधिकारों को विनियमित किया जाना चाहिए, बहुत महत्व का है । जैसा कि **लियो नब्बियां** बनाम **पीपल आफ दि स्टेट आफ न्यूयार्क**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है इन परस्पर सम्बन्धी अधिकारों के बीच सदैव टकराव होता है, "ऐसे किसी भी प्राइवेट अधिकार के प्रयोग के बारे में कल्पना नहीं की जा सकती है, जिसका प्रभाव किसी बात के सम्बन्ध में, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, जनता पर नहीं पड़ेगा; नागरिकों के आचरण को विनियमित करने सम्बन्धी विधायी विशेषाधिकार का ऐसा कोई भी प्रयोग नहीं है जो कि किसी सीमा तक उसकी स्वाधीनता को न्यून नहीं करेगा या उसकी सम्पत्ति पर प्रभाव नहीं डालेगा । किन्तु सांविधानिक अवरोध मात्र के अधीन रहते हुए, प्राइवेट अधिकार को सार्वजनिक आवश्यकता के सामने झुकना पड़ेगा ।" जस्टिस राबर्ट्स के शब्दों में, जिन्होंने लियो नब्बियां वाले (उपर्युक्त) मामले में न्यायालय का मत इस प्रकार से व्यक्त किया था——

> "संविधान किसी भी व्यक्ति को अपना कारबार इस रीति से चलाने की गारन्टी नहीं देता है जिससे कि सर्वसाधारण को या लोगों के किसी बड़े समूह को क्षति पहुंचे । किसी अन्य प्रकार के विनियम की भांति कीमत नियंत्रण केवल तभी असांविधानिक

---

[1] (1933) 291 यू० एस० (78 लायर्स एडीशन) 940.

होता है यदि वह मनमाना है, विरूद्धकारी हो या उस नीति से स्पष्ट रूप से असंगत हो जिसे अंगीकार करने के लिए विधान मण्डल स्वतन्त्र होता है, और इसी कारण से किसी व्यक्ति की स्वाधीनता में हस्तक्षेप अनावश्यक और अनौचित्यपूर्ण है।

68. प्रस्तुत मामले में पिटीशनरों के काउन्सेल ने कीमत नियतन के सम्बन्ध में यह कहा कि वह आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रच्छन्न रूप से अतिक्रमण करता है। उस दलील के समर्थन में **के०सी० गजपति नारायण देव और अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को प्रोद्धत किया गया जिसमें यह कहा गया था कि जब किसी प्रयोजन के प्रति निर्देश करके किसी विधायी शक्ति की परिभाषा की जाती है, तो ऐसा विधान जो कि उस प्रयोजन के लिए नहीं बनाया जाता है, अविधिमान्य होगा। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि यदि सरकार के पास किसी आवश्यक वस्तु की उचित कीमत नियत करने की आवश्यकता हो, तो उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने किसी बहाने से उस क्षेत्र का अतिचार किया है जो कि उनका नहीं है। आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्ति, निस्सन्देह प्रयोजन-सूचक है, किन्तु हमें यह बात अकाट्य मालूम होती है कि सरकार ने कीमत नियंत्रण आदेश इस दृष्टि से प्रख्यापित किया था जिससे कि अधिनियम की धारा 3(1) में उपवर्णित प्रयोजन सिद्ध हो सके। इस तथ्य से कि कोई विधायी अधिकार या कानूनी शक्ति के प्रयोग में पारित कोई प्रशासनिक आदेश किसी दोष को कम करने में अप्रभावी है, यह दर्शित हो सकता है कि वह अपना प्रयोजन सिद्ध करने में असफल रहा है जिससे कि सुधार के विरोधाभास का पता चलता है, किन्तु, जैसा कि **जोसेफ बोबेरेसिस** बनाम **पीपुल आफ दि स्टेट आफ इलिनोओस**[2] **वाले** मामले में मत व्यक्त किया गया था, दुस्साध्य सामाजिक विवाद्यकों के सम्बन्ध में कार्रवाई करने की दृष्टि से विधायी कोशिशों में अन्तर्निहित प्रयत्न और मूल सुधार के लिए वही कीमत चुकानी पड़ती है ; अतः हम यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हैं कि सरसों के तेल के लिए उचित कीमत नियत करके, सरकार ने प्राइवेट

---

1 (1954) एस० सी० आर० 1.

2 (1951) 96 लायर्ज एडीशन, 919.

अधिकारों का या ऐसे विधायी क्षेत्र का जिस पर कब्जा करने का उसे अधिकार नहीं है, प्रच्छन्न और सूक्ष्म रूप से अतिचार किया है।

69. संक्षेप में हमें पिटीशनरों की इस दलील को स्वीकार करना असम्भव प्रतीत होता है कि आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण विभेद का कार्य है या यह कि वह सम्पत्ति के अधिकार या व्यापार या कारबार करने के उनके अधिकार का अतिक्रमण करता है। पिटीशनरों ने अपने व्यापार सम्बन्धी संक्रियाओं के तन्त्र के बहुत ही विस्तृत बयौरे बताए हैं और उन्होंने उसके सम्बन्ध में यह दर्शित करने की कोशिश की है कि यहां और वहां की जिस किसी बात को उस समय जबकि सरसों के तेल की कीमत नियत की जा रही थी, विचार में लिया जाना था उसकी उपेक्षा कर दी गई है। उसी प्रकार की दलील के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए, **मेट्रोपोलिस थियेटर कम्पनी** बनाम **सिटि आफ शिकागो**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि किसी विधि में गलती निकालने में समर्थ होना उसकी अविधिमान्यता को दर्शित करना नहीं है। वह अन्यायोचित और क्रूर दिखाई पड़ सकती है किन्तु फिर भी वह न्यायिक हस्तक्षेप से मुक्त हो सकती है। सरकार की समस्याएं व्यवहारिक होती हैं और भले ही उन्हें इसकी आवश्यकता न हो, उनका अनुचित समायोजन करना न्यायोचित होगा, चाहे वह असंगत या अवैज्ञानिक क्यों न हो। किन्तु ऐसी आलोचना की अभिव्यक्ति जल्दबाजी में नहीं की जानी चाहिए। जो बात सर्वाधिक अच्छी होती है, वह सदैव दृष्टिगोचर नहीं होती है, किसी बात के चुनाव के सम्बन्ध में जो बुद्धिमता प्रदर्शित की जाती है, उसकी बाबत विवाद हो सकता है या उनकी निन्दा की जा सकती है। सरकार की गलतियां मात्र हमारे न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन नहीं रहती हैं। केवल प्रत्यक्षतः मनमाने प्रयोगों से ही उसे शून्य घोषित किया जा सकता है ....
"चूंकि संसद ने सरकार के विशेषज्ञतापूर्ण निर्णय के लिए कीमतों के नियतन का कार्य सौंप दिया था, इसलिए इस न्यायालय के लिए यह गलत होगा कि, जैसी कि **प्रिमियर आटोमोबाइल**[2] वाले (उपर्युक्त) मामले में सर्वसम्मति से की गयी थी, सरकारी विनिश्चय से सम्बन्धित प्रत्येक सूक्ष्म ब्यौरे की परीक्षा की जाए। जैसा कि **परमियन बेसिन एरिया रेट केसेज**[3]

[1] (1913) 57 लायर्स एडीशन 730.

[2] (1972) 2 एस० सी० आर० 526.

[3] (1968) 20 लायर्स एडीशन (ii) 312.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

वाले मामले में मत व्यक्त किया गया था, सरकार ऐसे व्यावहारिक समायोजन की हकदार है, जो कि विशिष्ट परिस्थितियों द्वारा अपेक्षित हो और कीमत नियंत्रण को केवल तभी असांविधानिक घोषित किया जा सकता है, यदि वह स्पष्ट रूप से मनमाना, विभेदकारी या उस नीति से स्पष्ट रूप से असंगत हो जिसे अपनाने के लिए विधानमण्डल स्वतन्त्र उत्पादक और विनियोजक दोनों का हित युक्तियुक्तता की सांविधानिक स्थिति में परिवर्तनीय बातों में से मात्र एक है और न्यायालयों को यह नहीं चाहिए कि वे युक्तियुक्तता के भीतर मोटे तौर से उचित कीमत नियत करें। यदि हम दलील पेश करने वाले पक्षकारों की ओर से अपने समक्ष पेश की गई नैराश्यपूर्ण दलीलों की परीक्षा करते, तो हमें कोई भी सन्देह नहीं है कि हम अपने संकुचित और सीमित प्राधिकार का ही अतिक्रमण करते।

70. समाप्त करने से पूर्व हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि पिटीशनर कीमत नियंत्रण आदेश को आधार बनाकर बहुत जल्दबाजी में इस न्यायालय में दौड़े आए थे। उसके द्वारा उन्होंने अपने आपको यह दर्शित करने से वंचित कर दिया कि, वस्तुतः वह आदेश उन पर अपूरणीय प्रभाव डालता है। इसके बजाए उन्होंने अनुमान पर आधारित परिकल्पना का सहारा कुविचारित जल्दबाजी के कारण इस दृष्टि से लिया जिससे कि उनकी इस व्यथा का निवारण हो सके कि सम्पत्ति का और व्यापार करने का उनका अधिकार समाप्त हो गया है और सारवान रूप से उस पर प्रभाव पड़ा है। यदि वे थोड़ा अधिक सब्र रखते, जिसका उपयोग यह देखने के लिए किया जा सकता था कि उस अनुभव ने कैसे कार्य किया, तो उससे उन्हें अधिक लाभ हुआ होता।

71. अतः आक्षेपित कीमत नियंत्रण आदेश विधिमान्य है और पिटीशनरों ने उसको जो चुनौती दी थी उसे असफल होना पड़ेगा। पहले ही पारित किए गए आदेश के समर्थन में हमारे कारण यही हैं और इसीलिए पिटीशन खर्चे सहित खारिज किए जाते हैं।

ज०　　　　　　　　　　　　　　　　पिटीशन खारिज किए गए।

श्री